वैद्य जीवनम् of लोलिम्बराज with the commentary दीपिका of सुखानन्द यतिवर्य - Edited with the commentary in Hindi by पं. श्रीकृष्णलाल of मथुरा - Published at इन्दुप्रकाश प्रेस. Mumbai, 1959 Vikram era..

1321

25

॥ श्रीः ॥

भिषग्वर्यलोलिम्बराजविरचितम् ।

वैद्यजीवनम् ।

श्रीमद्यतिवर्य्यसुखानन्दकृतया दीपिकया समेतम्

तथा

मथुरानिवासीश्रीकृष्णलालकृतभाषानु
वादसमलंकृतश्च ।

तदेतत्

श्यामलालश्रीकृष्णलालाभ्यां

मुम्बय्यां

'इन्दुप्रकाशाख्य' यंत्रालये मुद्रापयित्वा

प्रकाशितम्

वैक्रमीयाब्दाः १९५९

विज्ञप्ति.

यह वैद्यकका छोटासा ग्रन्थ अपने ढंगका अनोखा है. इसमें लोलिम्बराज कविने अपनी प्राणप्यारी रत्नकलाके प्रश्नोंका उत्तर बडे मनोहारी शब्दोंमें दियाहै. इससे उक्त भिषग्वरका यही आशय था कि अनुत्साही मनुष्यभी इन मेरे शब्दोंके लालित्यके कारण इसे कंठस्थ कर लेंगे; और काम पडनेपर इन छोटे छोटे चुटकलोसें अपने शरीरकी आरोग्यता बनाये रक्खें। इस छोटेसे ग्रन्थमें किसी आवश्यकीय बातकी कमी नहीं छोडी है. थोडी और बहुत सबही बातें लिखदीहैं. केवल इन्ही बातोंके याद कर लेनेसे सब प्रकारका काम चल सकता है.

लोलिम्बराजके देशकालका कुछ परिचय नहीं मिलता है परन्तु इससे कुछ नहीं, देशभी न सही, कालभी नहीं सही! परन्तु यह अपने देशकालमें ऐसा काम करके छोड गये हैं कि इनको सब देश और सब कालके लोग सुरूयातिके संग याद रखते आये हैं और सदैव याद रक्खेंगे. इससे सब देश और सब काल ही इनके होगये हैं.

हमें इस वर्त्तमान आवृत्तिके विषयमें कुछ नहीं कहना है. जैसाहै आप लोगोंके समक्ष है.

पं. श्रीधर शिवलालजी
ज्ञानसागर छापखाना
मुम्बई.

श्यामलाल श्रीकृष्णलाल
श्यामकाशी छापखाना
मथुरा.

॥ श्रीः ॥

अथ वैद्यजीवनविषयानुक्रमः ।

प्रथमो विलासः ।

अथ द्वितीयो विलासः ।

अनुक्रमणिका

इति वैद्यजीवनविषयानुक्रमः ।

तिब्बअकबर।

यद्यपि बहुतसे छोटे २ यूनानी ग्रन्थ अब तक छप चुके हैं परन्तु ऐसा बडा और प्रतिष्ठित ग्रन्थ अब तक नही छपा था इसके लिये बहुतसे सज्जन मनुष्योंकी इच्छा थी। इसमें रोगोंके निदान अत्यन्त अनोखे ढंगपर विस्तारपूर्वक दिये गयेहैं और उसके पास ही उस रोगकी चिकित्सा भी दी गई है। हमारे आयुर्वेदमें जैसे चरक, सुश्रुत, वाग्भटादि ग्रन्थ बहुमान्य और प्रतिष्ठित है उसी तरह यूनानीमें यह ग्रन्थ भी उच्चश्रेणीमें विराजमान हैयह बात कितनी ही वार देखी गई है कि जब आयुर्वेदीय वैद्य और बडे २ डाक्टर किसी रोगमें आशाहीन होजाते हैं तब यूनानी हकीमोंके छोटे २ नुस्खे तीरसे अधिक काम दे जाते हैं। भारतवर्षमें सहस्रों मनुष्यों की प्रकृती ऐसी वदल गई है कि यूनानी इलाज ही उनकी प्रकृतिके अनुकूल पडता है। इन सब बातोंको विचार कर हमने सोचा कि हमारी हिन्दी भाषा ऐसे अनुपम ग्रन्थसे सुशोभित क्यों नहो और उर्दू फारसी न पढे हुए हमारे भाई इससे क्यों वञ्चित रहैं, और सब अमीर गरीब इस ग्रन्थसे समान लाभ उठावें इसी हेतुसे हमने इस ग्रन्थका उर्दूसे भाषानुवाद करके छापा है, यह ग्रन्थ मुम्बईके सुवाच्य अक्षरोंमें चिकने बढिया कागज पर छापाहै आशा है कि सब हकीम, वैद्य, छोटे बडे अमीर, गरीब, शौकीन लोग इसकी एक एक प्रति अपने पास रक्खेंगे और तन्दुरुस्ती रखनेके लिये अमित लाभ उठावेंगे. यह ग्रन्थ प्रायः १२५० पृष्ठमेंहै मूल्य सात रुपया ७) डा. म. ॥।)

चरकसंहिता।

मूल भाषा टीका आयुर्वेदिक इतिहास सहित यह ग्रन्थ आयुर्वेदके ग्रन्थोंमे सबसे प्राचीन चिकित्साका अखिल भंडार और आर्य्यावर्त्तका गौरव स्वरूप है यदि आकाशके तारागण समुद्रकी वालूकी कण और मेघके विन्दु किसी प्रकार गणनामें आसक्तेहो तो इस ग्रंथके गुण भी गिननेमें आसक्तेहैं इसकी प्रशंशासे पत्र को भरना वृथा है क्योंकि कोई ऐसा हिन्दू नही है जिसने इसका नाम न सुना हो इस्के निघंट भागमें ५०० द्रव्योंकें अंग्रेजी, फारसी, अरबी, बंगाली, हिन्दी, गुजराती, मरहट्ठी आदि भाषाओंके नामान्तर है जिससे सबको उपयोगी होगी ग्रंथके प्रारम्भमें आयुर्वेदी इतिहास है जिसमें चरक, सुश्रुतादि सम्पूर्ण आयुर्वेदके ग्रंथकारोंका जीवनचरित्र भी है इसके विषयोंकी अनुक्रमणिका ८० पृष्ठमें है इस तरह इस ग्रंथमें सब मिलकर १५०० पृष्ठ है यह ग्रंथ ३० पौंडके मोठे चिकने विलायती कागजपर मुंबईके अक्षरोंमें बहुत स्पष्ट छापा गया है सुनहरी जिल्द मूल्य डाकव्यय सहित १०) रुपया.

निघण्टुराज।

इस उपरके नामको पढकर आप लोक चकित होगे कि इस ग्रंथका ऐसा भारी नाम कैसा रक्खा है। परन्तु इसके एकवार अवलोकनसे अवश्य कह उठेंगे-कि ऐसा ग्रंथ निघण्ट विषयमें अब तक नहीं छपा हमारी बहुत दिनसे आशा थी कि एक ऐसा निघण्टु छापना चाहिये था कि उसमें यावन्मात्र स्थावर जंगम द्रव्योंके नामान्तर और गुणागुण आजाय जिससे जगह जगह न भटकना पडै। इसमें मदनपाल, धन्वन्तरी, हरीतक्यादी, राजानिघण्टु, निघण्टु रत्नाकर, सुषेण-निघण्टु आदि यावन्मात्र आयुर्वेदीय निघण्टुओंसे तथा मख़ज़न उल अदविया, मखज़न उल मुफरिदात आदि यूनानी निघण्टुवोंसे तथा मैटीरिया मेडिका आदि डाक्टरी निघण्टुओंसे (इन सब निघण्टुओंका वर्णन पुस्तककी भूमिकामें होगा) द्रव्योंके नाम नामान्तर गुण अवगुण, द्रव्योंके प्रतिनिधी, अर्क, क्काथ, चूर्ण, सत् आदिके गुणागुण तथा जडी बूंटी आदिके गुणागुण दिये गये हैं. औषधोंके नामान्तरका कारण तथा बंगाली, मरहट्टी, गुजराती, लैटिन, ग्रीक, अंग्रेजी, पंजाबी, मारवाडी, तैलंगी, आदि नामान्तरभी होगे-यूनानी दवाओंके गुण होगे पुस्तकके आदिमें एक सूची होगा जो कमसे कम ५०० पृष्ठमें होगा जिसमे चाहे जिस भाषाका जाननेवाला द्रव्यके गुणागुण देख सके-यह ग्रंथ प्रायः ३००० पृष्ठमें समाप्त होगा।

यह ग्रंथ बहुत शीघ्र ही छापना प्रारंभ होगा.

आनन्दवृन्दावनचम्पू॥

सुखवर्तनी टीका सहित

लीजिये लीजिये जो ग्रंथ अब तक मरुस्थलके जलकी शांत रसातलमें छिपरहा था वही ग्रंथ सम्पूर्ण बाईसों स्तबकमें छपकर तयार है कोई पण्डित और विद्वान् ऐसा नहीं है जिसने इस्का नाम नही सुना हो परन्तु इस्के दर्शन दुर्लभ थे जिस्को हातसे लिखवानेमें पच्चीस तीस रुपयेसे कम नही लगते थे वही वैष्णवोंका एक मात्र धन श्रीमद्भागवतादि ग्रंथोंके वक्ताओंकी हस्तयष्टि विद्वानोंकी बुद्धिका परीक्षक भक्तिशून्य जनोंमें भक्तिसंचारक और श्रीकृष्णकी बाललीलाओंका महासागर छपकर तयार है इसकी श्लोक संख्या श्रीमद्भागवतके समान है वह बृहद्ग्रंथ ६२५ पृष्ठमें सम्पूर्ण विलायती कागजपर मुंबई अक्षरोंमें छपा हुआ तयार है इस्की जिल्द विलायती कपडोंकी बंधी हुई है श्लोकोंपर यत्र तत्र अन्वयाङ्क और कठिन स्थलोंपर टिप्पणीभी दी गई है इन सब बातोंके होते भी इस्का मूल्य केवल ३, डाकव्यय ॥, है लेना है तो ले लीजिये नहीं पीछे दाम बढ जायगा।

ओ३म् ।

श्रीहरिम्वन्दे ।

श्रीवृन्दावनविहारिणे नमः

वैद्यजीवनम् ।

दीपिकाभाषाभ्यामलंकृतम् ।

प्रथमो विलासः ॥

विश्वेशं शारदां दुर्गां गुरुं गणपतिं हरिम् ।
सुखानन्दः प्रकुरुते नत्वा लोलिम्बदीपिकाम् ॥

अथ लोलिम्बराजकविः शिष्टाचारमङ्गीकृत्य प्रारीप्सितस्य ग्रन्थस्याविघ्नेन परिसमाप्त्यर्थं श्रीकृष्णमर्थयन्नाशीर्वादात्मकं मङ्गलं मालिनीवृत्तेनातनोति—

प्रकृतिसुभगगात्रं प्रीतिपात्रं रमाया दिशतु किमपि धाम श्यामलं मङ्गलं वः ॥ अरुणकमललीलां यस्य पादौ दधाते प्रणतहरजटालीगाङ्गरङ्गत्तरङ्गैः ॥ १ ॥

प्रकृतिसुभगगात्रमिति ॥ वो युष्मभ्यं पाठकेभ्यः किमपि अनिर्वचनीयं धाम स्वरूपं मङ्गलमभिप्रेतार्थसिद्धिं दिशतु ददातु। दिश अतिसर्जने । सम्प्रदाने चतुर्थी । किम्भूतं धाम श्यामलं अतसीपुष्पसदृशं । श्यामं कृष्णवर्णवैशिष्ट्यं यस्यास्ति । सिध्मादित्वाल्लच् । पुनः किंप्रकारं प्रकृतिसुभगगात्रं प्रकृत्या स्वभावेन सुभगं सुन्दरं कोटिकंदर्पलावण्यं गात्रं शरीरं यस्य तत्, ' प्रकृतिर्गुणसाम्ये स्यादमात्यादिस्वभावयोः । योनौ लिङ्गे पौरवर्गे ' इति । 'गात्रं गजाग्रजङ्घादौ क्लीबमङ्गे कलेवरे' इति च मेदिनीकारः । 'प्रकृतिः सहजे योनावमात्ये परमात्मनि' इति विश्वः । प्रकृतीतिवा पदच्छेदः । किम्भूतं धाम प्रकृति परमात्मरूपम् । पुनः कीदृशं रमायाः प्रीतिपात्रं लक्ष्म्या हर्षस्य भाजनं । किं तद्धाम यस्य पादौ अरुणकमललीलां कोकनदविलासं । तच्छोभामिति यावत् । दधाते धारयतः । ननूर्मिष्ठ दोलायमानस्या-

रुणकमलस्य विलासोनुभूयते नतु निश्चलस्य । तत्राह—कैः प्रणतहरजटालीगाङ्गरिङ्गत्तरङ्गैरिति । प्रणतः प्रह्वीभूतो यो हरः स्मरहरस्तस्य जटाली सटापंक्तिस्तस्यां ये गाङ्गा गङ्गासंबन्धिनो रिङ्गन्त इतस्ततो गच्छन्तस्तादृशा ये तरङ्गाः स्वल्पोर्मयस्तैः । यद्यपि श्यामलस्याङ्घ्रियुग्मस्य कोकनदत्वं न सङ्घटते तथापि पादतलस्यारुणत्वमङ्गीकृत्योक्तमिति बोध्यम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—लोलिम्बराज अपने ग्रन्थकी निर्विघ्न परिसमाप्तिके लिये मंगलाचरण करतेहैं कि जिसका शरीर स्वाभाविकही सुंदर है, जो लक्ष्मीका प्रीतिपात्र है वह श्यामवर्ण श्रीविष्णु भगवान् आपका मंगल करें । कैसे श्रीविष्णु भगवान् हैं कि जिनके दोनों चरण नमस्कार करते हुए शिवजीकी जटाओंमें हिलोर मारती हुई गंगाकी तरंगों द्वारा रक्तकमलकी शोभाको धारण करते हैं ॥ १ ॥

निजेष्टदेवतां भवानीं लक्ष्यीकृत्य पुनर्नमस्कारात्मकं मङ्गलमाचरति-

रत्नं वामदृशां दृशां सुखकरं श्रीसप्तशृङ्गास्पदं स्पष्टाष्टादशबाहु तद्भगवतो भर्गस्य भाग्यं भजे ॥ यद्भक्तेन मया घटस्तनि घटीमध्ये समुत्पाद्यते पद्यानां शतमङ्गनाधरसुधास्पर्धाभिधानोद्धुरम् ॥ २ ॥

रत्नमिति ॥ अहं लोलिम्बराजः भर्गस्य सदाशिवस्य, भाग्यं फलोन्मुखीभूतं दैवं भवानीस्वरूपं भजे नमामि । कथम्भूतस्य भर्गस्य भगवतः । ऐश्वर्यादिविशिष्टस्य 'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा' । भगोऽस्यास्तीति भगवान् । तदस्यास्तीति मतुप् । तस्य अनेन भर्गस्य षडैश्वर्यविशिष्टत्वे कारणं भवानीति सूचितम् । किंभूतं भाग्यम् । वामदृशां वामा शोभना अतिमनोहरा दृक् दृष्टिर्यासां तासां स्त्रीणां मध्ये रत्नं श्रेष्ठम् । 'जातौ जातौ यदुत्कृष्टं तद्रत्नमभिधीयते' । पुनः कीदृशम् । दृशां सुखकरं दृशां पश्यतां वीक्षकाणां सौन्दर्यातिशयत्वात् हर्षोत्पादकम् । 'दृक् स्त्रियां दर्शने नेत्रे बुद्धौ च त्रिषु वीक्षके' इति मेदिनीकारः । 'नैव तादृक् कचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमं' इति मार्कण्डेयपुराणम् । पुनः किंभूतम्, श्रीसप्तशृङ्गास्पदं श्रीमान्सप्तशृङ्गो हिमाचलः । यद्वा दक्षिणदेशप्रसिद्धो गिरिविशेषः स एव आस्पदं स्थानं यस्य तत् । श्रीपदपूर्वत्वं द्व

हिमाद्रेः पर्वतराजत्वात् गिरिविशेषस्याम्बिकास्थानत्वाद्वा। पुनः कीदृशम्। स्पष्टाष्टादशबाहु स्पष्टाः उल्बणा अव्यक्ता अष्टादश बाहवो यस्य तत्। 'अष्टभुजा दशभुजा अष्टादशभुजा तथा। चतुर्भुजा महामाया महिषासुरमर्दिनी' इति पुराणागमेषु दर्शनात्। 'प्रीत्याष्टादशसंमितेषु युगपद्वीपेषु दातुं वरांस्त्रातुं वा भवती बिभर्ति भगवत्यष्टादशैतान्भुजान्' पुष्पाञ्जल्यां च। तत् किम् हे घटस्तनि! घटाविव स्तनौ यस्यास्तत्सम्बोधने। यद्भक्तेन यस्योपासकेन मया घटीमध्ये घटीपारीमिते काले पद्यानां श्लोकानां शतमुत्पाद्यते क्रियते। अनेनात्मनि भगवत्यनुग्रहातिशयः सूचितः। किंभूतं पद्यानां शतम्। अङ्गनाधरसुधास्पर्धाभिधानोद्धुरम् अङ्गनानां स्त्रीविशेषाणां वामलोचनानामधरा ओष्ठास्ते च सुधा च तयोः स्पर्धाभिधाने प्रतिपक्षनामकथने साम्यकथने वा उद्धुरं उद्धटम्। प्रतिपक्षमाह गोवर्द्धनाचार्यः 'सत्कविरसनासूचितशब्दापितशालिपाकतृप्तेन। दयिताधरमपि नाद्रियते का सुधा दासी' इति॥

भाषार्थ—मैं षडैश्वर्यसम्पन्न भगवान् शिवजीके भवानीस्वरूप भाग्यका स्मरण करताहूं. जो भवानी अत्यन्त मनोहर चितवनवाली स्त्रियोंमें अमूल्य रत्न है, वीक्षकोंको हर्षोत्पादक है, श्री हिमाचलके शिखरपर जिसका निवासस्थान है, जिसकी आठ दस वा अठारह भुजा व्यक्त हैं और है कलशकुचे! उसीकी भक्तिसे मैं घडी भरमें ऐसे सौ श्लोक रचताहूं जो स्त्रियोंके अधरामृतका तिरस्कार करनेमें समर्थ हैं अर्थात् इन श्लोकोंके पढनेमें ऐसा स्वाद आताहै कि जिसके सामने स्त्रियोंका अधरामृतपानभी फीका लगताहै॥ २॥

इदानीं ग्रन्थकारः स्वस्मिन्सूर्यकृपामाविष्कुर्वन्प्रतिज्ञां करोति—

दिवाकरप्रसादेन रोग्यारोग्यसमीहया॥
समासेन वयं कुर्मः काव्यं सद्वैद्यजीवनम्॥ ३॥

दिवाकरेति॥ वयं काव्यं ग्रन्थं कुर्मः। 'एकत्वं न प्रयुञ्जीत गुरावात्मनि चेश्वरे' इत्युक्तेर्वयमित्यात्मनि बहुलं। कवेरिदं कर्म काव्यं। 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' इति ष्यञ्। केन समासेन संक्षेपेण। कया रोग्यारोग्यसमीहया रुज्यते पीड्यते देहोऽनेनेति रोगः। रुजो भंगे। भावे घञ्। रोगस्तु दोषवैषम्यं। यथाह वाग्भटः—'रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता' इति। रोगोऽस्या-

स्तीति रोगी इन् । अरोगो दोषसाम्यं तस्य भावः आरोग्यं । रोगिण आरोग्यस्य समीहया वांछया । यथा रोगिणो दोषसाम्यं स्यात्तथा मनोरथेनेति भावः । ननु मनोरथमात्रेण देहस्वास्थ्यं कथं स्यात् तत्राह । दिवाकरप्रसादेनेति । सूर्यानुग्रहेण करणभूतेन विवस्वतः कृपया चारोग्यं प्रसिद्धं । यथोक्तं मत्स्यपुराणे 'आरोग्यं भास्करादिच्छेद्धनमिच्छेद्धुताशनात् । ज्ञानं च शंकरादिच्छेत्सुखमिच्छेज्जनार्दनात्' इति । यद्वा दिवाकरो नाम लोलिम्बराजस्य पिता तस्य प्रसन्नतया । 'प्रसादस्तु प्रसन्नतेत्यमरः' । पुत्रस्य कर्तव्यमवेक्ष्य पिता प्रसन्नो भवतीति प्रसिद्धं । किंविशिष्टं काव्यं सत् समीचनं । पुनश्च वैद्यानां जीवनं । यद्वा संतः पण्डिता ये वैद्यास्तेषां जीवनं प्राणप्रियतममिति तात्पर्यं । 'सन्सुधीः कोविदो बुधः' इत्यमरः । अनेन वैद्यमूढानामत्र नाधिकार इति सूचितमिति ॥ ३ ॥

भाषार्थ—दिवाकर (सूर्यनारायण वा दिवाकरनाम अपने पिता) की प्रसन्नतासे रोगियोंके स्वास्थ्य (तन्दुरुस्ती) के निमत्त उत्तम वैद्योंके प्राणाधार अथवा श्रेष्ठ वैद्यजीवन नाम काव्यको हम संक्षेपसे रचतेहैं ॥ ३ ॥

उत्साहमाश्रित्य दुष्टजनभयं सदृष्टांतमपहरति—

तथापि क्रियते ग्रन्थः सन्ति यद्यपि दुर्जनाः ॥
न हि दस्युभयाल्लोको दैन्यवानिह वर्तते ॥ ४ ॥

तथापीति ॥ यद्यपि दुर्जनाः परापवादरताः पिशुनाः संति तथापि ग्रन्थः क्रियते । मयेति शेषः । ननु दुर्जनेभ्यो भेतव्यं न च । तत्र दृष्टांतः । यथा लोको दस्युभयाच्चोरभीतेः दैन्यवान् किं भवति अपि तु न भवति । तथा दीनस्य भावो दैन्यं अबुधस्वरूपं कार्पण्यं तदस्त्यस्य स दैन्यवान् । नहि सावधानानां चोरभयं भवति तथा ममापि सत्कवेर्दुष्टभयं नास्तीति भावः ॥ ४ ॥

भाषार्थ—यद्यपि संसारमें बहुतसे दुर्जन हैं तथापि हम (निःशंक होकर) ग्रन्थ रचते हैं क्या चोरोंके भयसे संसार दीन होजाताहै ? (कदापि नहीं) ॥ ४ ॥

अधुना स्वकपोलकल्पितत्वं परिहरन्नाह—

गदगञ्जनाय चतुरैश्चरकाद्यैर्मुनिभिर्न्नृणां करुणया

कथितं यत् ॥ अखिलं लिखामि खलु तस्य रहस्यं
स्वकपोलकल्पितमिहास्ति न किंचित् ॥ ५ ॥

गदगञ्जनायेति ॥ चतुरैः कार्यकुशलैश्चरकाद्यैर्मुनिभिर्नृणां करुणया कारुण्येन यत् वैद्यशास्त्रं कथितमस्ति । किमर्थं गदगञ्जनाय गदा ज्वरादयस्तेषां रोगाणां नाशाय । खलु निश्चितं तस्य वैद्यशास्त्रस्य अखिलं रहस्यं कृत्स्नं गोप्यमभिप्रायं लिखामि । इहास्मिन् ग्रन्थे किञ्चित् स्वल्पतरमपि स्वकपोलकल्पितं स्वयंरचितं नास्ति । आदिशब्दादग्निवेश्यजातूकर्ण्यहारीतादीनां ग्रहणम् ॥ ५ ॥

भाषार्थ—बुद्धिमान् चरकादि ऋषियोंने मनुष्योंपर दया करके रोगोंके नाशके लिये जो कुछ वर्णन किया है, उसकी ही संपूर्ण गूढ बातोंको मैं लिखताहूं. इस ग्रन्थमें मेरी कपोलकल्पित कोई भी बात नहीं है ॥ ५ ॥

अस्मिन् ग्रन्थेऽनधिकारिण इन्द्रवज्रयाह—

येषां न चेतो ललनासु लग्नं मग्नं न साहित्यसुधा-
समुद्रे ॥ ज्ञास्यन्ति ते किं मम हा प्रयासानन्धा
यथा वारवधूविलासान् ॥ ६ ॥

येषामिति ॥ हा इति खेदे । ते मनुष्या मम प्रयासान् ग्रन्थकरणश्रमान् किं ज्ञास्यन्ति अपि तु न ज्ञास्यन्ति । ते के येषां चेतः चित्तं ललनासु कान्तासु न लग्नं साहित्यसुधासमुद्रे च येषां चेतो न मग्नं । साहित्यं काव्यं तदेव सुधा तस्याः समुद्रः तस्मिन् । तत्र दृष्टान्तः । यथा अन्धा नेत्रहीना वारवध्वाः वेश्याया विलासान् हावभावभेदान् न जानन्ति । हावभावभेदा यथा । प्रियसमीपगमने यः स्थानासनगमनविलोकनेषु विकारोऽकस्माच्च क्रोधस्मितचमत्कारमुखविष्कूननं स विलासः । यथाहुः 'यो वल्लभा चानुगतो विकारो गत्यासनस्थानविलोकनेषु । तथा स्मितं क्रोधचमत्कृती च विष्कूननं चास्यगतं विलासः ।' इति साहित्यविदः । बाला यथा वामदृशां विलासानिति वा पाठः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—बड़े शोककी बात है. कि जिन मनुष्योंका मन कभी मनोहारिणी स्त्रियोंमें नहीं फँसा है और न जिनके मनने

कभी काव्यरूपी सुधासमुद्रमें गोते नहीं लगाये हैं वे मेरे इस ग्रन्थके रचनेके परिश्रमको ऐसे नहीं जानसकते हैं जैसे नेत्रहीन पुरुष वारांगनाओंके हावभावोंको नहीं जानसकते हैं ॥ ६ ॥

" भिषग्द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टय " मिति चतुष्पादचिकित्साया वैद्यः प्रथमः पादः । अत आदौ वैद्यस्य लक्षणमुपेंद्रवज्रयाह—

गुरोरधीताखिलवैद्यविद्यः पीयूषपाणिः कुशलः क्रियासु ॥ गतस्पृहो धैर्यधरः कृपालुः शुद्धोऽधिकारी भिषगीदृशः स्यात् ॥ ७ ॥

गुरोरिति ॥ ईदृशः भिषक् वैद्यः अधिकारी स्यात् आरोग्यकरणे प्रभुर्भवेत् । किंभूतः गुरोरधीताखिलवैद्यविद्यः । गुरोः वैद्यविद्योपदेष्टुः सकाशात् अधीता पठिता अखिला अष्टाङ्गा वैद्यविद्या येन सः । वैद्यविद्यायाः अष्टाङ्गान्याह सुश्रुतः 'शल्यं शालाक्यं कायचिकित्सा भूतविद्या कौमारभृत्यं अगदतन्त्रं रसायनतन्त्रं वाजीकरणतन्त्रं ' इति । 'शरीरनेत्रव्रणरोहणानि विषाणि भूतानि च बालतन्त्रं । रसायनं पञ्चविधं च कर्म अष्टाङ्गमाहुरिति योगतन्त्रम् ' ॥ ननु चौर्यादिना गृहीतविद्यः । यथोक्तं ' विद्यां गृहीतुमिच्छन्ति चौर्यच्छद्मबलादिना । न तेषां सिद्ध्यते किंचिन्मणिमन्त्रौषधादिकम् ' इति । पुनः कीदृशः पीयूषपाणिः पीयूषममृतं पाणौ यस्य सः हस्तासिद्ध इत्यर्थः । पुनः किंविशिष्टः क्रियासु कुशलः अभ्यस्तकर्मा । यथाह वाग्भटः ' दक्षस्तीर्थात्तशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा शुचिर्भिषक् ' इति । पुनः किंभूतः गतस्पृहः गता स्पृहा दीनेभ्यो द्रव्यप्राप्तिवांछा यस्य सः । यदुक्तं ' न तु कुर्वीत लोभेन चिकित्सापुण्यविक्रयम् । ईश्वराणां वसुमतीं लिप्सेतार्थं तु वृत्तये ' इति । पुनः कथंभूतः धैर्यधरः धरतीति धरः धैर्यस्य धृतेर्धरः । स्वयं धैर्यं धराति रोगीणोपि धैर्यं धारयतीति यावत् । पुनश्च कृपालुः दुःखितेषु करुणाशीलः । पुनः किंविशिष्टः शुद्धः बाह्याभ्यन्तरशौचेन पवित्रः । यद्वा शुद्धः वस्त्राभरणादिनोज्ज्वलः । उक्तं च ' कुचैलः कर्कशः स्तब्धः कुग्रामी स्वयमागतः । पञ्च वैद्या न पूज्यन्ते धन्वन्तरिसमा अपि ' इति ॥ ७ ॥

भाषार्थः—जिसने गुरुमुखसे अष्टांग आयुर्वेदको पढाहो, जिसके हाथमें अमृत हो अर्थात् जिस रोगीपर हात डालै वह निरोग हो जाय, जिसने चिकित्सामें अभ्यास कियाहो, जो निर्लोभ

हो, जो रोगको देखकर स्वयं धैर्य रक्खै और रोगीकोभी धीरजमें रक्खै, कृपालु और पवित्र हो ऐसा वैद्यही वैद्य होनेको अधीकारी होता है. ॥ ७ ॥

प्रथमतो वैद्यकृत्यमाह--

आदौ निदानविधिना विदध्याद्व्याधिनिश्चयम् ॥
ततः साध्यं समीक्षेत पश्चाद्भिषगुपाचरेत् ॥ ८ ॥

आदाविति ॥ भिषक् चिकित्सकः आदौ प्रथमं व्याधिनिश्चयं व्याधे रोगस्य निश्चयमवधारणं निर्णयं विदध्यात्कुर्यात् । यथाह वाग्भटः 'व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः । एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ' इति । केन निदानविधिना निदानोक्तपञ्चप्रकारेण । यथा-'निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा । संप्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम् ' इति । ततो रोगपरीक्षातः साध्यं परीक्षेत पश्चात् साध्ये ज्ञाते उपाचरेत् चिकित्सेत् । यथाह वाग्भटः 'रोगमादौ परीक्षेत तदनन्तरमौषधम् ॥ ततः कर्म भिषक्पश्चात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत्' इति ॥ ८ ॥

भाषार्थ--वैद्यको उचित है कि प्रथमही निदान, पूर्वरूप, उपशम और संप्राप्ति इन पांच प्रकारसे रोगका निश्चय करैं, फिर रोगके साध्यासाध्य लक्षणोंको देखै, जो रोग साध्य हो तौ उसकी चिकित्सा करनेमें प्रवृत्त हो ॥ ८ ॥

अथ ज्वरिणो हितमुपदिशति—

औषधं मूढवैद्यानां त्यजन्तु ज्वरपीडिताः ॥
परसंसर्गसंसक्तं कलत्रमिव साधवः ॥ ९ ॥

औषधमिति ॥ भो ज्वरपीडिता नराः! मूढवैद्यानां निदानादिशास्त्रानभिज्ञचिकित्सकानामौषधं त्यजन्तु दूरतः परिहरन्तु । यतः 'प्रायश्चित्तं चिकित्सा च ज्योतिषं धर्मनिर्णयम् । विना शास्त्रेण यो ब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातिनम् ' इति । यथा ब्रह्मग्रहस्तात्किमपि न गृह्यते वर्णाश्रमिणा तथा मूढवैद्यस्यापि करादिति भावः । सर्वरोगेषु ज्वरस्य मुख्यत्वात् ज्वरग्रहणेन सर्वरोगाणां ग्रहणम् । तत्र दृष्टान्तः । के किमिव साधवः । सज्जनाः कलत्रमिव भार्यामिव । ननु साधूनामनुचिताः कलत्र-

त्यागस्तत्राह परेति । किंभूतं कलत्रं परसंसर्गसंसक्तं परपुरुषसंगे आसक्तम् । यथा 'स्वच्छंदगा हि या नारी तस्यास्त्यागो विधीयते । न चैव स्त्रीवधं कुर्यान्न चैवांगविकर्तनम्' इत्यागमः ॥ ९ ॥

भाषार्थः—हे ज्वरसे पीडित मनुष्यो! जो वैद्य ऊपर कहे हुए निदानादिको नहीं जानते हैं उन मूढ वैद्योंको इस तरह त्यागदो जैसे सज्जनजन परपुरुषमें आसक्त स्त्रीका परित्याग कर देते हैं ॥ ८ ॥

रोगिणः पथ्यसेवनमेव हितम् 'पथ्याशी न हि रोगभागिति' वृद्धोक्तेस्तं विनौषधिसेवनम् वृथैवेत्याह—

पथ्ये सति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः ॥
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधनिषेवणैः ॥ १० ॥

पथ्ये सतीति ॥ गदार्तस्य रोगिणः पथ्ये सति शास्त्रीयात्पथोऽनपेतं पथ्यं । 'धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते' इति यत् । तस्मिन् सति क्रियमाणे असति अक्रियमाणे च औषधनिषेवणैः किं फलं । न किमपीत्यर्थः । यथोक्तं चरकेण 'विनापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते । नतु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि' इति । पथ्येऽसतीति श्लोकार्धं गोमूत्रिकाबन्धेन द्विरुच्चारणीयम् । एकत्रार्धेऽसतीति च्छेदः ॥ १० ॥

भाषार्थ—जो रोगी पथ्यसे रहताहै उसका औषध सेवन करना व्यर्थ है क्यों कि उसे विनाही औषधके आराम हो जाताहै और जो पथ्यहीन है उसको औषधियोंके सेवनसे कुछ लाभ नहीं है क्यों कि महर्षि चरकाचार्यने भी कहाहै कि विना औषधके केवल पथ्यसेही व्याधियां निवृत्त हो जातीहैं, और जो पथ्यसे नहीं रहते उनको सैंकडों उपाय करनेपरभी कुछ नहीं होता ॥ १० ॥

महीन्द्रमहिलात्रपाप्रदपदारविन्दे तथा पयोनिधिपर्यस्तती जलधरैरुपात्ता यथा ॥ मम प्रकृतिनीरसा नृपभिषग्भिरङ्गीकृता भविष्यति सरस्वती रसवती मुरासांपतेः ॥ ११ ॥

महीन्द्रेति ।। मह्यां पृथिव्यामिन्द्र इवेन्द्रो महीन्द्रः । सप्तमीति योगविभागात् समासः । महीन्द्रस्य महिला स्त्री तस्याः त्रपाप्रदं लज्जाप्रदं पादारविन्दं चरणकमलं यस्याः सा तस्याः संबुद्धिर्महीन्द्रमहिलात्रपाप्रदपदारविन्दे मुरासापतेः मुरासा नाम लेलिम्बराजवल्लभा तस्याः पतिर्भर्ता तस्य मम प्रकृतिनीरसा स्वभावनीरसा सरस्वती वाणी नृपभिषग्भिरङ्गीकृता सती यथा रसवती भविष्यति तथा । कथम् यथा जलधरैर्मेघैरुपात्ता गृहीता पयोनिधिपयस्तती समुद्रजलसंततिः समुद्रजलसमूहः रसवती भवति । किंलक्षणा प्रकृतिनीरसा स्वभावेन नीरसा क्षारत्वात् ॥ ११ ॥

भाषार्थ—हे राजमहिलाओंके निन्दकचरणवाली प्रियतमें ! *मुरासापति मेरी वाणी यद्यपि स्वाभाविकही नीरस है तथापि जब राज्यवैद्य इसे अंगीकार करलेंगे तब यह रसीली हो जायगी जैसे समुद्रका खारा जलभी मेघोंसे ग्रहण किये जानेपर स्वादिष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

द्रुतविलंबितेनाह--

इह गमिष्यति वैद्यमतिः श्रमं प्रथममेव पुनस्तु महासुखम् ॥
प्रियतमस्य मृगाक्षि समागमे नवकरग्रहणा गृहिणी यथा॥१२॥

इहेति ॥ हे मृगाक्षि हे हरिणनयने ! मृगस्य अक्षिणीवाक्षिणी यस्याः । मध्यमपदलोपी समासः । इह अस्मिन् ग्रन्थे वैद्यमतिः प्रथममेव विचारकाल एव श्रमं खेदं गमिष्यति प्राप्स्यति । पुनः विचारोत्तरं सम्यगर्थे ज्ञाते महासुखं प्राप्स्यति महच्च तत् सुखं च । आन्महत इत्यात्वम् । का कस्मिन्निव । यथा गृहिणी प्रियतमस्य समागम इव । गृहमस्त्यस्याः । अतइनिठनाविति न् । ङीप् । सा प्रियतमस्य अतिशयेन प्रियस्य भर्तुः समागमे । समागमो नाम विवाहप्रथमरात्रौ बलाद्रतिंविनोदस्तस्मिन्निव । कथंभूता गृहिणी नवकरग्रहणा कृतपाणिग्रहणा नवं करग्रहणमस्याः सा यथा प्रथमं श्रमं गच्छति अग्रे सुखं गच्छति तद्वत् ॥ १२ ॥

भाषार्थः—हे मृगनयनी ! इस मेरे ग्रन्थके पढनेमें प्रथमही वैद्यकी बुद्धिको बडा कष्ट होगा फिर विचार करनेपर अत्यन्त सुख मिलेगा जैसे नवविवाहिता स्त्री पतिसमागमकी

---

* मुरासापती कोलिम्बराज है. मुरासा इनकी स्त्रीका नाम था.

प्रथम रात्रिमें घोर कष्ट उठाती है परन्तु फिर सुखका अनुभव करती है ॥ १२ ॥

आदौ सर्वरोगप्रधानस्य ज्वरस्य प्रतीकारार्थं कविः प्रतिज्ञां करोति–

यतः सर्वेषु रोगेषु प्रायशो बलवान् ज्वरः ॥
अतस्तस्य प्रतीकारं प्रथमं ब्रूमहे वयम् ॥ १३ ॥

यत इति ॥ सर्वेषु रोगेषु अतिसारादिषु यतो ज्वरो बलवान् बलिष्ठो मुख्यः अतएव तस्यैव प्रतीकारमुपायं वयं ब्रूमहे कथयामः । तदुक्तं चरके 'रोगराट् सर्वभूतानामन्तकृद्दारुणो ज्वरः । तस्मात्तस्य विशेषेण यतते प्रथमं भिषक्' । सुश्रुतेपि 'ज्वरमादौ प्रवक्ष्यामि यतो वै रोगराट् स्मृतः' । वाग्भटेपि 'ज्वरो रोगपतिः पाप्मा मृत्युराजोऽशनोंतकः । क्रोधो दक्षाध्वरध्वंसी रुद्रोर्ध्वनयनोद्भवः' इति ॥ १३ ॥

भाषार्थ—क्योंकि ज्वर प्रायः सब रोगोंमें प्रधान होता है, इसलिये हम प्रथम उसीका उपाय वर्णन करते हैं ॥ १३ ॥

देवदारुधनाविश्वाबृहतीद्वयपाचनम् ॥
ज्वरे पूर्वं पिबेच्चारुपयोधरधराधरे ॥ १४ ॥

देवदार्विति ॥ भो चारुपयोधरधराधरे! चारू सुन्दरौ पयोधरावेव धराधरौ पर्वतौ यस्यास्तत्संबुद्धिः । उपमितं व्याघ्रादिभिरिति समासः । देवदार्वादीनां पाचनं ज्वरे पूर्वं प्रथमं ज्वरभेषजदानकाले पिबेत् । उक्तं च 'नागरं देवकाष्ठं च धान्यकं बृहतीद्वयम् । दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरिताय ज्वरापहमिति' । नागरं शुंठी काष्ठं देवदारु धान्यकं प्रसिद्धं । बृहतीद्वयं धावनीद्वयम् ॥ १४ ॥

भाषार्थ—हे गिरिशिखरवत उन्नत कुचवाली प्रिये ! देवदारु, धनियां, सोंठ, छोटी कटेरी, बडी कटेरी, इनका पाचन अर्थात् क्वाथ प्रथमही ज्वरमें पीवै ॥ १४ ॥

ज्वरोपायेषु लंघनस्य प्राधान्यमाह—

अधुना शृणु तन्वि लंघनं ज्वरितानां प्रथमं प्रशस्यते ॥
सुरपादपधान्यधावनीयुगविश्वौषधिपाचनं ततः ॥ १५ ॥

अधुनेति ॥ हे तन्वि ! अधुना संप्रति त्वं शृणु मद्वचनमवधारय । किं तत् ज्वरितानां संजातज्वराणां ज्वरः संजातो येषां ते ज्वरिताः तेषां । तदस्य संजात-

मिति तारकादित्वादितच्। ज्वरस्य विप्रकृष्टकारणकथनपूर्विका संप्राप्तिः यथा 'मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः। बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः' इति। तस्य सामान्यलक्षणं यथा 'स्वेदावरोधः संतापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा। युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरो व्यपदिश्यते' इति। तस्य पूर्वरूपं यथा 'श्रमो रतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः। इच्छाद्वेषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥ जृम्भाङ्गमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः। अप्रहर्षश्च शीतं च भवन्त्युत्पत्स्यति ज्वरे' इति। ज्वरितानां प्रथमं पूर्वं लंघनं प्रशस्यते अनशनं प्रशस्तं विहितं। यथा 'ज्वरागमे प्रकुर्वीत प्रथमं वातवर्जनम्। लंघनं चोष्णपानीयम्' इति। ततः परिपक्वज्वरेषु सुरपादपादिभिः पञ्चभिः पाचनार्थं क्वाथः। तत्र सुरपादपो देवदारुः १ धान्यं धान्याकम् २ धावनीयुगम् कंटकारीद्वयम् ३ विश्वौषधिः शुंठी ४। तत्र ज्वरपाकलक्षणम् 'आसप्तरात्रात्तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः। मध्यं चतुर्दशाहान्तं पुराणस्तत उच्यते ॥ त्रिसप्ताहे व्यतीते तु जीर्णसंज्ञां लभेत सः'। एतत्सर्वज्वरे पाचनं। यथोक्तमन्यत्र 'नागरं देवकाष्ठं च धान्याकं बृहतीद्वयं। दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरिताय ज्वरापहम्' इति। पाचनद्रव्याणां परिमाणं यथा 'दशरत्तिकमाषेण गृहीता तोलकद्वयम्। दत्त्वाम्भः षोडशगुणं ग्राह्यं पादावशेषितम्' इति वैद्यकपरिभाषा। तत्र क्वाथविधिरुक्तो भावप्रकाशे 'पानीयं षोडशगुणं क्षुण्णे द्रव्यपले क्षिपेत्। मृत्पात्रे क्वाथयेत् ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम्। कर्षादौ तु पलं यावत् दद्यात् षोडशकं जलम्। तज्जलं पाययेद्धीमान् कोष्णं मृद्वग्निसाधितम्। शृतः क्वाथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते'। क्वाथपानमात्रामाह 'मात्रोत्तमा पलेन स्यात्त्रिभिरक्षैस्तु मध्यमा। जघन्या च पलार्धेन स्नेहक्वाथौषधेन च। तन्त्रान्तरे 'क्वाथद्रव्यपले वारि द्विरष्टगुणमिष्यते। चतुर्भागावशिष्टं तु पेयं पलचतुष्टयम्। दीप्तानलं महाकायं पाययेद्द्व्यञ्जलीजलम्। अन्ये त्वर्धं परित्यज्य प्रसृतं तु चिकित्सकाः। क्वाथमाराममिच्छंतस्त्वष्टभागावशेषितम्। पारंपर्योपदेशेन वृद्धवैद्याः पलद्वयम्'। अष्टभागावशेषितस्य चतुर्भागावशिष्टापेक्षया गुरुत्वात् दीप्तानलं महाकायं पलद्वयं पाययेत्। मध्यमाग्निमल्पकायं पलमात्रं पाययेत्। मात्रोत्तमा पलेन स्यादिति वचनात्। 'क्वाथेक्षिपेत्सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः। वातपित्तकफातङ्के विपरीतं मधु स्मृतम्। जरिकं गुग्गुलं क्षारं लवणं च शिलाजतु। हिङ्गु त्रिकटुकं चैव क्वाथे शाणोन्मितं क्षिपेत्। क्षीरं घृतं गुडं तैलं मूत्रं चान्यद्द्रवं तथा। कल्कं चूर्णादिकं क्वाथे निक्षिपेत्कर्षसंमितम्। तत्रोपविश्य विश्रांतः प्रसन्नवदनेक्षणः। औषधं हेमरजतमृद्भाजनपरिस्थितम्। पिबेत्प्रसन्नहृदयः पीत्वा पात्रमधोमुखम्। विधायाचम्य सलिलं ताम्बूलाद्युपयोजयेदिति' ॥ १८ ॥

भाषार्थ—हे कृशांगी! अब सुनो, ज्वरवाले मनुष्यको प्रथमही सात दीन लंघन कराके पीछे देवदारु, धनियां, छोटी

कटेरी, बडी कटेरी और सोंठ, ये सब दो तोले लेकर सोलह गुनें जलमें चढा दे जब चौथाई जल रह जाय तब उतारकर छान ले और गुनगुना रहनेपर पिला दे। इस क्राथको तीन अथवा पांच दिन पान करानेसे ज्वर पचकर उतर जायगा ॥ १५ ॥

अथ क्रमेण वातपित्तकफज्वरेषु त्रीन् क्राथान् प्रदर्शयन्निंद्रवज्रयाह—

छिन्नौषधांभोधरधन्वयासैः किराततिक्तांबुदरेणुयासैः ॥
विश्वावृषाभोधरधन्वयासैः क्राथो मरुत्पित्तकफज्वरेषु ॥ १६ ॥

छिन्नेति ॥ छिन्ना गुडूची, औषधं शुंठी, अंभोधरो मुस्ता, धन्वयासो दुरालभा एतैश्चतुर्भिर्वातज्वरे क्राथः। किरातो भूनिंबः तिक्ता कटुकी अंबुदो मुस्ता रेणुः पर्पटः यासो यवासः पंचभिः पित्तजे ज्वरे क्राथः । विश्वा शुंठी वृषो वासकः अंभोधरो मुस्ता धन्वयासो धमासकः चतुर्भिः कफज्वरे क्राथः पाचनार्थं देयः। तत्र वातिकादिज्वराणां क्रमेण लक्षणानि । यथा 'वेपथुर्विषमो वेगः कण्ठोष्ठपरिशोषणम्। निद्रानाशः क्षवस्तंभो गात्राणां रौक्ष्यमेव च । शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं बद्धविड्ता । शूलाध्माने जृंभणं च भवंत्यनिलजे ज्वरे' पैत्तिकस्य यथा 'वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राल्पत्वं तथा वमिः। कंठोष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते। प्रलापो वक्त्रकटुता मूर्च्छा दाहो मदस्तृषा। पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं पैत्तिके भ्रम एव च।' श्लेष्मिकस्य लक्षणं यथा 'स्तैमित्यं स्तिमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता। शुक्लमूत्रपुरीषत्वं स्तंभस्तृप्तिरथापि च । गौरवं शीतमुत्क्लेदो रोमहर्षोऽति निद्रता। प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेक्ष्णोश्च शुक्लता' इति माधवः॥१६॥

भाषार्थ—गिलोय, सोंठ, नागरमोथा और जवासा इनका क्राथ वातज्वरको नष्ट करता है। चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, पितपापडा और धमासा इनका क्राथ पित्तज्वरको दूर करता है तथा सोंठ, अडूसा नागरमोथा और जवासा इनका क्राथ कफ ज्वरको दूर करता है ॥ १६ ॥

पुनश्च वातज्वरे कषायश्लोकानाह—

उशीरकलशीमहौषधकिरातकांभोधरस्थिराबृहतिका-
द्वयामृतलतात्रिकंटैः कृतम् ॥ कषायकममुं पिबे-

त्पवनज्वरव्याकुलः पुमान्दशशतच्छदच्छदमद-
ग्रसल्लोचने॥ १७॥

उशीरेति ॥ हे दशशतच्छदच्छदमदग्रसल्लोचने! दशशतं छदाः पत्राणि यस्य स दशशतच्छदः सहस्रपत्रं कमलं तस्य छदः पत्रं तस्य मदं सौंदर्याभिमानं तं ग्रसतीति ग्रसत् ग्रसन्ती लोचने यस्याः सा तत्संबोधने पवनजज्वरव्याकुलः वातजनितज्वरेण विव्हलः पुमान् अमुं उशीरादिदशभिः कृतं कषायकं पिबेत् 'तत्र उशीरं जलाशयं वीरणमूलमितियावत्' कलशी पृष्ठिपर्णी, महौषधं शुंठी, किरातको भूनिंबः अंभोधरो मुस्ता, स्थिरा शालपर्णी, बृहतिकाद्वयम् कंटकारियुगं रिंगणीतिख्यातम्, अमृतलता गुडूची, त्रिकंटो गोक्षुर इति ॥ १७ ॥

भाषार्थ—वातज्वरकी चिकित्साको कहते हैं—हे कमलसरीखे नेत्रोंवाली! खस, पृष्ठिपर्णी, सूंठ, चिरायता, नागरमोथा, शालपर्णी, छोटी कटेरीकी जड़, बड़ी कटेरीकी जड़, गिलोय, गोखरू इन्होंके काढेको वातज्वरसे पीडित हुआ रोगी पीवै ॥१७॥

पुनश्च वातज्वरे कषायमाह—

पीयूषलोकपाञ्चालीचरणानां कषायकः ॥
पीयमानः प्रिये हन्ति हनुमज्जनकज्वरम् ॥ १८ ॥

पियूषेति ॥ हे प्रिये! त्रयाणां पीयूषलोकपाञ्चालीचरणानां पीयमानः कषायकः हनुमज्जनकज्वरं हन्ति 'पीयूषं गुडूची, लोकः शुंठी, पांचालीचरणः पिप्पलीमूलं, 'पांचाली मागधी कणा' इति निघण्टुः। हनूमतो वानरस्य जनकः पिता वायुः तस्य ज्वरं नाशयतीत्यर्थः ॥ १८ ॥

भाषार्थ—हे प्रिये! गिलोय, सोंठ, पीपलामूल, इनका काढ़ा पीनेसे वातज्वर दूर होजाता है ॥ १८ ॥

अथ वातपित्तज्वरोपशमाय पञ्चभद्रनामानं कषायमाह—

छिन्नोद्भवापर्पटवारिवाहभूनिंबशुंठीजनितः कषायः ॥
समीरपित्तज्वरजर्जराणां करोति भद्रं खलु पंचभद्रः ॥१९॥

छिन्नोद्भवेति ॥ समीरपित्तज्वरजर्जराणां वात्तपित्तज्वरेण व्याकुलानां नराणां छिन्नोद्भवादिभिः कृतः पञ्चभद्रनामा कषायः खलु निश्चयने भद्रं कुशलं

करोति । तत्र छिन्नोद्भवा गुडूची, पर्पटः तिक्तम्, वारिवाहः मुस्तकः, भूनिंबः किरातः, शुंठी शृङ्गवेरं । अथ वातपित्तज्वरमाह–'तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा । कण्ठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तमः । पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः' इति ॥ १९ ॥

भाषार्थ––गिलोय, पित्तपापडा, नागरमोथा, चिरायता, सोंठ इनका काढ़ा पंचभद्र कहलाता है. यह वातपित्तज्वरसे पीडित मनुष्योंको निरोग करता है ॥ वातपित्तज्वरमें प्यास, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, निद्रानाश, सिरदर्द, कंठ और मुखमें सूखन, वमन, रोमांचहोना, अरुचि, अंधकार हडफूटन, और जंभाई होते हैं ॥१९॥

अथ पित्तज्वरे कषायमाह—

मृगमदविलसल्ललाटमध्ये मृगमदहारिणि लोचनद्वयेन ॥
मृगनृपतितनूदरश्रि पित्तज्वरमहह द्यति रैणवः कषायः २०

मृगमदेति ॥ हे मृगमदविलसल्ललाटमध्ये मृगमदेन कस्तूर्या विलसत् शोभमानं ललाटमध्यं यस्याः । पुनः किंभूते हे मृगमदहारिणि मृगे यो मदो नेत्रचाञ्चल्यरूपस्तमपहर्तुं शीलमस्याः सा तत्संबोधने । केन लोचनद्वयेन । द्वौ अवयवौ यस्य तद्द्वयम् । संख्याया अवयवे तयप् । द्वित्रिभ्यां तयस्याऽयज्वा । लोचनयोर्दर्शनसाधनयोर्नेत्रयोर्द्वयं तेन । पुनश्च हे मृगनृपतितनूदरश्रि मृगाणां नृपतिः सिंहः तस्य यत्तनु सूक्ष्मं उदरं तस्य श्रीः शोभा यस्याः सा । त्रीणि संबोधनानि परिचितकथनायेति भावः । रैणवः कषायः रेणोः पर्पटस्य अयं रैणवः निर्यासः पित्तज्वरं द्यति हंति । द्यतीति दोअवखण्डनेऽस्य लटिरूपम् । अहह इति अद्भुतम् ॥ २० ॥

भाषार्थ––हे कस्तूरीसे अलंकृत मध्यललाटवाली ! अपने दोनों नेत्रोंसे हरिणोंका मद भंगकरनेवाली ! हे केहरिकटी ! पितपापड़ेका काथ पित्तज्वरके दूर करनेमें आश्चर्योत्पादक गुण रखता है ॥ २० ॥

अयं श्लोकः क्षेपकः कस्मिंश्चित्पुस्तके दृश्यते अतो मयापि व्याख्यायते—

एक एव खलु पैत्तिकज्वरं हंति पर्पटकृतः कषायकः ॥
चंदनोदकमहौषधान्वितश्चेत्तदा किमु पुनर्विचारणा २१

एक एवेति—पूर्वार्धः उक्तार्थ एव। चंदनं रक्तचंदनोदकं नेत्रवाला, महौषधं शुंठी आभ्यामन्वितो युक्तश्चेत्तदा पैत्तिकं ज्वरं हंति इत्यत्र पुनर्विचारणा प्रमाणैस्तत्त्वपरीक्षा किं। अत्रापि विमर्शः किं। उक्तं च 'एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः। किं पुनर्यदि युज्येत चंदनोदीच्यनागरैः' इति॥ २१॥

भाषार्थ—अकेला पितपापडेका काढाही निश्चय पित्तज्वर को हरता है फिर जो इसमें लालचंदन, नेत्रवाला और सोंठ ये भी मिला दिये जांय तौ कहनाही क्या है॥ २१॥

आरोग्यलक्ष्मीरुपयाति पित्तज्वरातुरं रेणुकषायभाजम्॥
मां त्वं यथा रत्नकले स्मरार्तं कृतप्रकोपोपशमं सखीभिः २२॥

आरोग्येति॥ हे रत्नकले! यथा सखीभिः सह त्वं सहर्षं स्मरार्तं मामुपयासि तथा रेणुकषायभाजं रेणोः कषायः तं भजतीति तं पित्तज्वरेण आतुरः तं आरोग्यलक्ष्मीः उपयाति। नीरुजो भवतीत्यर्थः॥ २२॥

भाषार्थ—हे रत्नकले! जैसे सखियोंसे प्रसन्न की हुई तू मुझ कामपीडितके गलेसे लिपट जाती है वैसेही पित्तपापड़ेका काढ़ा पीनेवाले रोगीके पास आरोग्य लक्ष्मी जाती है अर्थात् उसका पित्तज्वर जाता रहता है॥ २२॥

द्राक्षापर्पटराजवृक्षकटुकामुस्ताभयानां जलं मूर्च्छाशोषनिदाघतृट्प्रलपनभ्रांत्याढ्यपित्तज्वरे॥ दुःस्पर्शाप्रमदाकिरातकटुकासिंहास्यरेणूद्भवः क्राथः शर्करयान्वितो हरति च तृट्दाहपित्तज्वरान्॥ २३॥

द्राक्षेति॥ द्राक्षादिषण्णां जलं क्राथः मूर्च्छादियुक्ते पित्तज्वरे देयः। तत्र द्राक्षा गोस्तनी, पर्पटः तृष्णारी, राजवृक्षः व्याधिघातः, कटुका कटुरोहिणी, मुस्ता मुस्तकः, अभया पंचरेखा हरीतकी, मूर्च्छा मोहः येन नरः काष्ठवत्पतति, शोषः यक्ष्मा, निदाघः स्वेदः, तृट् उदन्या, प्रलपनं प्रलापः, भ्रांतिः भ्रमः, यथोक्तं 'द्राक्षाभयापर्पटकाब्दतिक्ताक्राथं सशम्याकफलं विदध्यात्। प्रलापमूर्च्छाभ्रमदाहशोषतृष्णान्विते पित्तभवे ज्वरे च' इति। दुःस्पर्शो यवासः, प्रमदा प्रियंगुः, किरातो

भूनिंबः, कटुका कटुरोहिणी, सिंहास्यो वासकः, रेणुः पर्पटः, एतेषांषण्णां कषायः शर्करयान्वितः सितासंयुक्तः पीतः तृद्दाहास्रपित्तज्वरान् हरति दूरीकरोति। तत्र काथे सिद्धे पूते अर्धपलोन्मिता शर्करा पश्चात्प्रक्षेप्तव्या । यथोक्तं 'क्काथे क्षिपेत्सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः । वातपित्तकफातङ्के विपरीतं मधु स्मृतम्' इति । अत्रैवं क्रमः । वातातङ्के सिताकथितजलाच्चतुर्थांशा प्रक्षेप्तव्या । पित्तातङ्के अष्टमांशा कफातङ्के षोडशांशा शर्करा प्रक्षेप्तव्या । मधुनि विपरीतः क्रमः । यथा वातातङ्के षोडशांशं मधु, पित्तातङ्के अष्टमांशं, कफातङ्के चतुर्थांशं मध्वित्यर्थः । तृट् तृषा दाहो गात्रसंतापः अस्रपित्तं रक्तपित्तम्, एकस्मिन् व्याधौ योगद्वयमनेन श्लोकेनोक्तं बोद्धव्यम् ॥२३॥

भाषार्थ--मुनक्का, पित्तपापड़ा, अमलतास, कुटकी, नागरमोथा और हरड़, इनका काढ़ा मूर्च्छा, शोष, दाह, तृषा, प्रलाप, भ्रम, इन्होंसे संयुक्त पित्तज्वरमें हित है और जवासा, कांगनी, चिरायता, कुटकी अडूसाके पत्ते, पित्तपापडा इनका काढ़ा, तृषा, दाह, रक्तपित्त, पित्तज्वर, इन सबको दूर करता है ॥ २३ ॥

अहो किमर्थं बहुभिः कषायैः पराशराद्यैर्मुनिभिः प्रदिष्टैः ॥
छिन्नाशिवापर्पटतोयपानात् पित्तज्वरः किं न सरीसरीति २४

अहो इति ॥ अहो विस्मये पराशराद्यैर्मुनिभिः प्रदिष्टैः प्रदर्शितैः बहुभिः कषायैरनेकैः क्काथैः किमर्थम् किं प्रयोजनम् । यतः छिन्नाशिवापर्पटतोयपानात् पित्तज्वरः किं न सरीसरीति अतिशयेन न गच्छति किं । अपि तु गच्छत्येव । तत्र छिन्ना गुडूची, शिवा धात्री, पर्पटो रेणुः एषां क्काथस्य पानात् पित्तज्वरोऽवश्यं गच्छतीत्यर्थः । उक्तं च 'पर्पटामृतधात्रीणां क्काथः पित्तज्वरं जयेत्' इति ॥ २४ ॥

भाषार्थः--और और बहुतसे काढे जो पाराशर आदि मुनियोंने कहे हैं उनसे क्या प्रयोजन है? जब गिलोय हरड और पित्तपापडेका काढाही पित्तज्वरको समूल नष्ट करदेताहै ॥ २४ ॥

अथ पित्तश्लैष्मिकज्वरे क्काथमाह—

लोहितचन्दनपद्मकधान्यच्छिन्नरुहापिचुमन्दकषायः ॥ पित्तकफज्वरदाहपिपासावान्तिहुताशविनाशकरः स्यात् ॥ २५ ॥

लोहितेति ॥ लोहितचन्दनादीनां क्वाथः पित्तकफज्वरादीनां नाशको भवति । तत्र लोहितचन्दनं रक्तचन्दनं, पद्मकं पद्मककाष्ठं, धान्यं कुस्तुंबुरुः, छिन्नरुहा अमृता, पिचुमंदो निंबः । कीदृशः कषायः पित्तकफज्वरदाहपिपासावांतिहुताशविनाशकरः तत्र पित्तकफाभ्यां सहितोज्वरः पित्तकफज्वरः दाहः गात्रसंतापः शरीरौष्ण्यं वा, पिपासा उदन्या, वांतिः वमनं, तासां हुताशविनाशः जाठराग्निमान्द्यं एतानि हरति ईदृशः । उक्तं च 'गुडूची निंबधान्याकं पद्मकं रक्तचन्दनम् । एष सर्वज्वरान् हंति गुडूच्यादिस्तु दीपनः । हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनः' इति ॥ २५ ॥

भाषार्थः—लालचंदन, पद्माखकी छाल, धनियां, गिलोय, निंबकी छाल, इनका काढ़ा पित्तकफज्वर, दाह, पिपासा और वमनको दूर करता है ॥ २५ ॥

सदाहज्वरादौ क्वाथमाह—

जलजलजजलवाहरेणुविश्वौषधशिशिरैः शिशिरं जलं शृतं स्यात् ॥ सपदि सुखकरं सदा सदाहज्वरतृषि योज्यमिदं नवज्वरेऽपि ॥ २६ ॥

जलजलजेति ॥ जलादिषड्भिः शृतं क्वथितं तज्जलं पश्चात् शिशिरं जलं शीतं कृत्वा सदाहज्वरतृषि पिबतः सपदि तत्क्षण एव सुखकरं स्यात् । यथोक्तं चक्रदत्तेन 'विश्वांबुपर्पटोशीरघनचन्दनसाधितम् । दद्यात् सुशीतलं वारि तृट्छर्दिज्वरदाहनुत्' इति । इदं पित्तजे नवज्वरेऽपि सदा योज्यम् । 'पैत्तिके वा ज्वरे देयमल्पकालसमुत्थिते' इत्युक्तेः । तत्र जलं ह्रीवेरं, जलजमुशीरं, जलवाहो मुस्ता, रेणुः पर्पटः, विश्वौषधं शुंठी, शिशिरं रक्तचंदनं । 'कषायपानयोर्योज्यं चंदनं रक्तचंदनम्' इत्युक्तेः । शिशिरं जलं यस्य एतादृशमिति शृतमित्यस्य विशेषणं । सदाहज्वरतृषि दाहेन सह वर्तमानो यो ज्वरः तस्मात् या तृट् तस्यामित्यर्थः । सहितं षडंगमेतदिति वा पाठः । तैः सहितं षडंगमेतत् तृषि योज्यम् । अन्यत्रापि चोक्तम् 'पयः शुंठी पयः शीतं पयोरेणुः पयोमुचः । षडङ्गं शृतशीतं स्यात्सद्यस्तृष्णाविनाशनम्' इति ॥ २६ ॥

भाषार्थः—नेत्रबाला, खस, नागरमोथा, पित्तपापडा, सोंठ, लालचंदन, इन छः दवाओंका काढ़ा ठंडा करके पीनेसे दाहज्वर

और तृषा शांत हो जाते हैं और यही क्काथ नवीन ज्वरमें भी हितकारी है ॥ २६ ॥

सहस्रधौतेन घृतेन कर्तुरभ्यङ्गयोगः कृशतां बिभर्ति ॥
अन्याङ्गनासङ्गमसादरस्य स्वीयेषु दारेषु यथाभिलाषः ॥२७॥

सहस्रेति ॥ घृतेन पक्कनवनीतेन आज्येन अभ्यंगयोगः लक्षणसंगमः कर्तुः दाहस्य कृशतां दौर्बल्यं बिभर्ति । दाहस्य नाशं करोतीति भावः । कीर्यते विक्षिप्यते इतस्ततश्चाल्यते कायो येन सः कर्ता दाहः तस्य । कॄ विक्षेपे । ण्वुलतृचाविति तृच् । कीदृशेन घृतेन सहस्रधौतेन सहस्रावृत्त्या सहस्रवारं प्रक्षालितेन । तत्र दृष्टान्तः अन्याङ्गनासङ्गमसादरस्य परयोषायां रतस्य नरस्य स्वीयेषु दारेषु आत्मीयभार्यायामभिलाषो यथा वाञ्छेव । इवार्थोत्र यथाशब्दः ॥ २७ ॥

भाषार्थः—हजारबार धोयेहुए घृतका मर्दन करनेसे मनुष्यका दाह शीघ्र कमहोजाता है जैसें परनारियोंमें आसक्त मनुष्यकी रुचि अपनी स्त्रीमें नहीं रहती है ॥ २७ ॥

अमलैः कमलैरथानिलैरलसैः पुष्परसैः समन्वितैः ॥
जलकेलिकथाकुतूहलैरपि पित्तज्वरजा रुजो जयेत् ॥ २८ ॥

अमलैरिति ॥ वैद्यः एतैर्वक्ष्यमाणैरपि पित्तज्वरजाः पैत्तिकज्वरोद्भवाः रुजः तृद्दाहादीन् आमयान् जयेत् एषामभिभवेनोत्कर्षं स्वीकुर्यात् । कैः तत्राह, अमलैरिति । अमलैः रजोरहितैः सद्योविकसितैः सहस्रपत्रैः पुनश्च पुष्परसैः समन्वितैः मकरन्दयुक्तैः एतादृशैः अलसैर्मन्दैरनिलैः शीतलैर्वायुभिः । पुनः कैः जलकेलिकथाकुतूहलैः जलैर्नद्यादिसलिलैर्याः केलयः क्रीडाः तासां नौकादिष्वारोहणं कृत्वाऽवलोकनेन नतु स्वयं मज्जनेन कथाभिः प्रबंधकल्पनाभिः कुतूहलैः अपूर्ववस्तुदिदृक्षाद्यतिशयैः चेष्टाविशेषैरेतैरित्यर्थः ॥ २८ ॥

भाषार्थः—प्रफुल्लित परागयुक्त कमलों और शीतल मंद पवनका सेवन करानेसे और अनेक प्रकारकी जलक्रीडा और खेल तमाशे दिखाकर पित्तज्वरजनित रोगोंको दूर करना उचित है ॥ २८ ॥

श्रीखण्डमण्डितकलेवरवल्लरीणां मुक्ताफलाकुलविशालकुचस्थलीनाम् ॥ वैदग्ध्यमुग्धवचसां सुविलासिनीनामालिङ्गनं सकलदाहमपाकरोति ॥ २९ ॥

श्रीखण्डेति ॥ सुविलासिनीनां लीलावतीनां यद्वा विलासो हावविशेषः तद्विशिष्टानां शोभनस्त्रीणां यत् आलिङ्गनं उपगूहनं तत् पित्तज्वरजनितं सकलदाहं पूर्वलक्षणं गात्रसंतापं अपाकरोति निराकरोति । कीदृशीनां सुविलासिनीनाम् । श्रीखण्डमण्डितकलेवरवल्लरीणां श्रीखण्डेन चन्दनेन मण्डिता अलंकृता कलेवरवल्लरी शरीरलता यासां तासाम् । पुनः किंभूतानां मुक्ताफलाकुलविशालकुचस्थलीनां मौक्तिकैः फलैः आकुला व्याप्ता विशाला पृथुला कुचस्थली स्तनपरिधिर्यासां तासां । पुनः कीदृशीनां वैदग्ध्यमुग्धवचसां वैदग्ध्येन दाक्ष्येण मुग्धं मनोहरं वचो वचनं यासां तासामित्यर्थः ॥ २९ ॥

भाषार्थः–जिनके शरीररूपी बेलपर चन्दन लिपट रहा है और जिनके कुचमंडलोंपर मोतियोंकी माला झूल रही है, ऐसी चतुराईके साथ मनोहर वचन बोलनेवाली सुंदर विलासवती स्त्रियोंका आलिंगन सब प्रकारके दाहको दूर करता है ॥ २९ ॥

शय्यापल्लवपद्मपत्ररचिता वासो वयस्यैः समं कान्तारे कुसुमस्फुरत्तरुवरे वीणान्वितं गायनम् ॥ आलापाश्च शुकालिकोकिलकृताः कान्ताश्च कान्ताः कथा वार्ताश्चामलवालकाव्यजनजा दाघं निराकुर्वते ॥३० ॥

शय्येति ॥ एते शय्यादयः दाघं दह्यते कायोऽनेन । दह भस्मीकरणे हलश्चेति घञ् न्यंकादित्वात्कुत्वम् । दाघो दाहस्तं निराकुर्वते दूरीकुर्वन्ति । के ते तत्राह । पल्लवपद्मपत्ररचिता शय्या पल्लवानि कदल्याः किसलयानि नूतनानि पत्राणि पद्मपत्राणि कमलदलानि तै रचिता निर्मिता शय्या संस्तरः दाहार्दितं कञ्जकदलीदलसंस्तरे इत्युक्तत्वादनुक्त्वापि कदली योज्या । पुनश्च कुसुमस्फुरत्तरुवरे कुसुमैः सुमनसैः स्फुरन्तः प्रकाशमानास्तरुवराः श्रेष्ठवृक्षाः यत्र तस्मिन् कान्तारे वने वयस्यैः सवयोभिः स्निग्धैः समं सार्धं वासोऽवस्थानं । पुनः वीणान्वितं गायनं वल्लक्या मिलितं गायकं गानं

वा । भूयश्च शुकालिकोकिलकृता आलापाश्च शुकाश्च अलयश्च कोकिलाश्च ते तत्र शुकाः प्रियदर्शनाः कीराः अलयो भ्रमराः कोकिलाः वनप्रियाः एतेषांमालापाः आभाषणानि । पुनश्चकान्ताः मनोरमाः सर्वाङ्गसुन्दर्यो नार्यः । कान्ता इत्युभयान्वयी तेन कान्ताः कथा मनोरमाः प्रबन्धकल्पनाः । यद्वा कान्ताः स्त्रियः कान्ताकथा इत्येकं पदं वा तेन कान्तानां स्त्रीविशेषाणां कथाः शृङ्गाररसोत्तराः गोष्ठ्यः संलापाः । भूयश्च अमलवालकव्यजनजा वाताः अमलं निर्मलं वालकं स्वल्पं यत् व्यजनं तस्माज्जाताः एतादृशा वाताः । यद्वा अमलवालकयुक्ताः ये व्यजनास्तेभ्यो जाताः । 'व्यजनं तालवृंतकमित्यमरः' । वालज इति वा पाठः अमलवालाज्जातास्तालवृंतजाश्च अमलवालाज्जाता ये व्यजनास्तेभ्यो जाता इति वा ॥ ३० ॥

भाषार्थः—केलेके पत्ते और कमलदलोंसे रची हुई शय्यापर शयन करना, प्रफुल्लित फलफूलोंसे लदे हुए वृक्षोंके वनमें अपनीसी अवस्थावाले मित्रोंके साथ रहना, वीणाके शब्दसे युक्त रागोंका सुनना, तोता, भौंरा और कोयलके शब्द सुनना, मनोहारिणी स्त्रियोंकी चर्चा, छोटे २ पंखोंकी हवा दाहको दूर करते हैं ॥ ३० ॥

तृड्दाहमोहाः प्रशमं प्रयान्ति निम्बप्रवालोत्थितफेनलेपात्॥
यथा नराणां धनिनां धनानि समागमाद्वारविलासिनीनाम् ३१

तृडिति ॥ निम्बप्रवालोत्थितफेनलेपात् निम्बस्य सर्वतोभद्रस्य प्रवालान्यभिनवपत्राणि किसलयानि तेभ्य उत्थित उत्पन्नो यो फेनो जलहासः तस्य लेपाल्लेपनात् निम्बपत्राणां स्वरसो मन्थनीयस्तस्माद्यः फेन उत्तिष्ठति संमर्द्य इति भावः । तन्मर्दनाच्च तृट् च दाहश्च मोहश्च ते प्रशमं शमतां प्रयान्ति प्राप्नुवन्ति । कस्मात् कानिव वारविलासिनीनां वारे जनसमूहे विलसनशीलानां निर्लज्जानां वेश्यानां समागमात् सङ्गात् मिथुनीभावाद्वा धनिनां धनसंपन्नानां आढ्यानां नराणां धनानीव वित्तानि यथा । 'वारः सूर्यादिवासरे । द्वारे हरे कुब्जवृक्षे वृन्दावसरयोः क्षणे' इति मेदिनीकारः ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—नीमके कोमल पत्तोंका रस निकाल कर उसके मथनेसे जो झाग उठते हैं उन झागोंका लेप करनेसे तृषा, दाह और

मोह ऐसे नष्ट हो जातेहैं. जैसे वेश्याओंके समागमसे धनवान् मनुष्योंका धन नष्ट होजाताहै ॥ ३१ ॥

पुनश्च तापप्रतीकारमाह—

अयि नितम्बिनि गायनलालसे मधुरचारिणि काममदालसे॥
हरति दाहमघर्मकराननने हिमहिमांशुजलैरनुलेपनम् ॥३२॥

अयीति ॥ अयीति सम्बोधने । हे नितम्बिनि । नितम्बः स्त्रियाः पश्चात्कटितटः स विशालोऽस्त्यस्याः अतइनिठनाविति इनिः ङीप् । तत्सम्बोधने हे नितम्बिनि ! हे गायनलालसे गायने लालसा महानभिलाषो मनोरथो यस्याः सा तत्सम्बोधने । पुनः हे मधुरचारिणि मधुरं नितम्बस्य भारेण गजवन्मंदगमनेन प्रियं चरितुं शीलमस्याः सा । तत्सम्बोधने हे काममदालसे ! कामेन रिरंसया यो मदो हर्षोन्मत्तता तेन अलसा क्रियायां मन्दा आलस्ययुक्ता इतियावत् । पुनश्च हे अघर्मकराननने घर्मकरः सूर्यस्तद्भिन्नोऽघर्मकरः शीतांशुः तद्वदाननं मुखं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे चन्द्रवदने ! हिमहिमांशुजलैरनुलेपनं दाहं हरति तत्र हिमं चन्दनम् , हिमांशुः कर्पूरः, जलं ह्रीबेरं, एतैस्त्रिभिरनुलेपनं लेपः दाहं शरीरसन्तापं हरतीत्यर्थः ॥ ३२ ॥

भाषार्थः–हे दीर्घनितम्बिनी ! हे गानशीले ! हे मधुरालापिनी! हे काममदसे आलस्यवती ! हे चन्द्रवदने ! सफेत चन्दन कपूर और सुगन्धवाला इनको घिसकर लेप करनेसे दाह शान्त हो जाता है ॥ ३२ ॥

पुनश्चाह—

शुभ्राभ्रविभ्रमधरे शशाङ्ककरसुन्दरे ॥
चन्दनैश्चर्चिते हर्म्ये स्वापस्तापमपोहति ॥ ३३ ॥

शुभ्रेति ॥ शुभ्राभ्रविभ्रमधरे शुभ्रं शुक्लवर्णं यदभ्रं मेघः आकाशो वा । 'अभ्रं मेघो वारिवाहः' इत्यमरः । तस्य विभ्रमो भ्रान्तिस्तस्य धरो धारणकर्ता तस्मिन् अत्युच्चधवलत्वात् तद्वद् भातीत्यर्थः । ननु मेघाकाशयोः शुभ्रत्वमप्रसिद्धं श्यामो मेघः नीलं नभ इति तु प्रसिद्धं शुभ्रत्वं कथमित्याशङ्क्याह–शशाङ्ककरसुन्दरे इति । शशाङ्कस्य हिमांशोः कराः दीधितयस्ताभिः ? सुन्दरे शोभने चन्द्रिकाया हि तयोः शुभ्रत्वं सुप्रसिद्धम् । पुनश्च चन्दनैश्चर्चिते चन्दनैर्मलयजैश्चर्चिते तज्जलैः

संसिक्ते ईदृशि हर्म्ये काष्ठेष्टकादिभिर्निर्मिते धनिनां धवलगृहे अत्युच्चे तत्र स्वापो निद्रा तापं देहसन्तापमपोहति दूरीकरोति ॥ ३३ ॥

भाषार्थः—श्वेत बादलका सा भ्रमोत्पादक चन्द्रकिरणोंसे सुशोभित तथा चन्दनके जलसे चर्चित सुन्दर महलमें शयन करना तापको मिटाता है ॥ ३३ ॥

पुनरप्याह—

पित्तज्वरे किं रसफाण्टलेपैः किं वा कषायैरमृतेन किं वा ॥
पेयं प्रियाया मुखमेकमेव लोलिम्बराजेन सदानुभूतम् ॥३४॥

पित्तज्वरे किमिति ॥ हे काममदालसे इति सम्बोधनं सम्बध्यते इति । रसफाण्टलेपैः पित्तज्वरे किम् । तत्र रसः स्वरसः फाण्टः कषायविशेषः । स यथा क्षुण्णमौषधजातमुष्णोदके प्रक्षिप्य सद्योऽभिषुत्य पूत्वा यः पीयते स फाण्टः । यथाहुः 'क्षिप्त्वोष्णतोये मृदितः फाण्ट इत्यभिधीयते' इति । अपि च 'क्षुण्णद्रव्य-पले सम्यग्जलमुष्णं विनिक्षिपेत् । मृत्पात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत्पटात् । सोयं चूर्णद्रवः फाण्टो भिषग्भिरभिधीयते' इति । तेषां लेपाः निम्बप्रवालोत्थितफे-नादीनां लेपनानि । कषायाः क्वाथाः एतैः किं प्रयोजनम् । अमृतेन शीतलजलेन वा किं प्रयोजनं । ननु चिकित्सां विना कथं ज्वरतापशान्तिः स्यात् तत्राह-पेयमिति । एकं सर्वोपायेभ्यःश्रेष्ठं केवलं प्रियायाः प्रीणातीति प्रिया भार्या तस्याः मुखमेव वक्त्रमेव निश्चयेन पेयं पातुं योग्यम् । एवेत्यवधारणे । यतो लोलिम्बराजेन ग्रन्थकर्त्रा सदानुभूतं सर्वदा कृतपरिचयम् । अत्र सन्देहो न कर्तव्य इति तात्पर्यम् । अयं विधिः कामज्वरेपि कर्तव्यः । तदुक्तम् 'कान्ताकटाक्षदग्धानां वद वैद्य किमौषधम् । दृढमालिङ्गनं पथ्यं क्वाथश्चाधरचुम्ब-नम्' इति । अन्यच्च । 'क्व भ्रातश्चलितोसि वैद्यकगृहं किं तद्रुजां शान्तये किं ते नास्ति गृहे सखे प्रियतमा सर्वान्गदान् हन्ति या । वातं तत्कुचकुम्भमर्दनवशात्पित्तं तु वक्त्रामृताच्छ्लेष्माणं व्यपहन्ति हन्त सुरतव्यापारकेलिश्रमात्' । पुनश्च 'अधरामृतेन पित्तं वातं च हरति तदङ्गसङ्गेन । हन्ति च सुरतेन कफं त्रिदोषशमनं वपुः स्त्रीणाम्' इति ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—पित्तज्वरमें रस, फांट और चन्दनादिका लेप निरर्थक है, काथ और शीतल जलभी व्यर्थ हैं. इसमें केवल अपनी

प्रियाका अधरामृत पान करनाही बहुत उचित हैं. लोलिम्बराज कहते हैं कि मैंने इसका अच्छी रीतिसे अनुभव कियाहै ॥ ३४ ॥

प्राणप्रेयसि मा पिबन्तु पुरुषाः पित्तज्वरव्याकुला नाना-
वल्लिजलं विलम्बितफलं पाने विषादप्रदम् ॥ तत्तैः किं
क्रियतां चिकित्सकपते मुग्धे सुखं सेव्यतां सद्यस्तापहरः
सुधाधिकतरः कान्ताधरः केवलम् ॥ ३५ ॥

प्राणप्रेयसीति ॥ भोः प्राणप्रेयसि प्राणप्रिये ! पित्तज्वरव्याकुलाः पित्तज्वर-पीडिताः पुरुषाः मा पिबन्तु । किम् । नानावल्लिजलम् । वल्ली तु व्रततिर्लतेत्यमरः । किम्भूतम् । विलम्बितफलं दीर्घकालफलं विषादप्रदम् । भोः चिकित्सकपते वैद्यस्वा-मिन् लोलिम्बराज ! तत् तस्मात्कारणात् तैः किं क्रियताम् । भो मुग्धेऽप्रगल्भे मुग्धे इति विशेषणमन्वर्थम् । वैद्यकलायामकुशलत्वात् तैः कान्ताऽधरः सुधाऽधिकतरोऽमृ-ताधिकतरः सद्यस्तापहरः केवलं सेव्यताम् । अयं विधिः कामज्वरे नतु पित्ते । उक्तं च । 'कान्ताकटाक्षदग्धानां वद वैद्य किमौषधम् । दृढमालिङ्गनं पथ्यं क्वाथश्चाधर-चुम्बनम्' इति पाठान्तरमिदं रसिकत्वादत्र लेख्यम् ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—हे प्राणप्रिये ! पित्तज्वरसे पीडित मनुष्योंको अनेक प्रकारकी औषधियोंके काथादिक पीने उचित नहींहै. क्योंकि इनका फल देरमें होता है और पीनेमें जीभी बिगड़ता है, यह सुनकर रत्नकला बोली, हे भिषग्वर ! तौ वे पुरुष क्या करें ? तब लोलिम्बराजने कहा, हे मुग्धे ! तत्काल तापको हरनेवाले अमृतसे भी मिष्ट केवल प्यारिके अधरोंका यथेच्छ पान करना चाहिये ॥ ३५ ॥

अथ पित्तज्वरे अन्तर्दाहशांत्युपायमाह—

यदि पर्युषितं धान्यसलिलं सितया समम् ॥
प्रभातसमये पीतमन्तर्दाहं नियच्छति ॥ ३६ ॥

यदीति ॥ यदि पक्षान्तरे धान्यसलिलं धान्यस्य धान्याकस्य जलं पर्युषितं व्युष्टं क्षुण्णं । धान्याकं मृत्पात्रस्थजले प्रक्षिप्य आच्छाद्य रात्रौ बहिः स्थापितं तत् व्युष्टं सितया शर्करया समं सार्धं तत् प्रभातसमये प्रातःकाले पीतं सत् अंतर्दाहं शरीराभ्यन्तरज्वालां नियच्छति नाशयति । यथाहुः । 'व्युषितं धान्याकजलं प्रातःपीतं सशर्करं पुंसाम् । अन्तर्दाहं शमयत्यचिराद्दूरप्ररूढमपि' इति । अन्यच्च 'प्रातः सशर्करः पेयो हिमो धान्याकसम्भवः । अंतर्दाहं तथा तृष्णां जयेत्स्रोतोविशोधनः' इति । पलं धान्यम् षट्पलं जलं सिता पलमिता इति कर्तव्यता ॥ ३६ ॥

भाषार्थः—शरीरके भीतर पित्तकी अधिकतासे ज्वालासी जलती हो तौ १ पल धानियां कूटकर एक मिट्टीके पात्रमें भिगोदेवै, प्रातःकाल छानकर मिश्री मिलाकर पीलेवै तौ दाह और तृषा शान्त हो जाते हैं ॥ ३६ ॥

अथ वातपित्तज्वरे नवाङ्गपाचनमाह—

पञ्चमूल्यमृतामुस्ताविश्वभूनिम्बसाधितः ॥
कषायः शमयत्याशु वायुमायुभवं ज्वरम् ॥ ३७ ॥

पंचमूलीति ॥ पञ्चानां मूलानां शालपर्ण्यादीनां समाहारः पञ्चमूली । द्विगोरिति ङीप् । तथाहि 'शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरम् । वातपित्तहरं वृष्यं कनिष्ठं पञ्चमूलकम्' । अमृता गुडूची, मुस्ता मुस्तकम्, विश्वं शुण्ठी, भूनिम्बः चिरतिक्तः एतैर्नवभिर्निर्मितः कषायः क्वाथः वायुमायुभवं वायुर्वातः मायुः पित्तं ताभ्यां जनितं ज्वरमाशु शीघ्रं शमयति नाशयति । यथाह चक्रपाणिदत्तः । 'संसृष्टदोषेषु हितं संसृष्टमयपाचनम् । विश्वामृताब्दभूनिंबैः पञ्चमूलीसमन्वितैः । कृतः कषायो हंत्याशु वातपित्तोद्भवं ज्वरम्' इति । तत्र वातपित्तज्वरलक्षणं । यथा 'तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहो निद्रानाशः शिरोरुजा । कंठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तमः । पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः' इति ॥ ३७ ॥

भाषार्थः—पंचमूली (छोटी कटेरी, बडी कटेरी, शालपर्णी वा सलवन, पृश्निपर्णी वा पिठवन, गोखरू), गिलोय, नागरमोथा, सोंठ और चिरायता इनका काढा वातपित्तज्वरको शीघ्रही नष्ट करता है ॥ ३७ ॥

अथ श्वासकाससहिते कफज्वरेऽवलेहमाह—

शृङ्गीकणाकट्फलपौष्कराणां क्षौद्रान्वितानां विहितोऽवलेहः।
श्वासेन कासेन युतं बलासज्वरं जयेदत्र न कापि शङ्का३८

शृङ्गीति ॥ क्षौद्रान्वितानां शृङ्ग्यादिचतुर्णां विहितोऽवलेहः श्वासेन कासेन च सहितं बलासज्वरं जयेत् अत्र कापि शंका नास्ति । तत्र क्षौद्रं कपिलवर्णं मधु । यथोक्तम् 'मक्षिकाः कपिलाः सूक्ष्माः क्षुद्राख्यास्तत्कृतं मधु । मुनिभिः क्षौद्रमित्युक्तं तद्वर्णात्कपिलं भवेत् । गुणैर्माक्षिकवत्क्षौद्रं विशेषान्मेहनाशनम्' इति भावप्रकाशे । क्षुद्राभिर्मक्षिकाभिः कृतम् । क्षुद्राभ्रमरेत्यन्ये । शृङ्गी अजशृङ्गी, कणा मागधी, कट्फलः श्रीपर्णिका, पौष्करं पुष्करमूलम्, एषां कृतोवलेहः । अवलेहो नाम 'क्काथादेर्यत्पुनः पाकाद्घनत्वं सा रसक्रिया । सोऽवलेहश्च लेहश्च प्राश इत्युच्यते बुधैः' इति वैद्यकपरिभाषा ॥ ३८ ॥

भाषार्थः—काकडासिंगी, पीपल, कायफल, पौहकरमूल इनके चूर्णको शहत मिलाकर चाटनेसे श्वास और खांसी सहित जो कफज्वर होता है वह शीघ्र नष्ट हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ३८ ॥

अथ श्वासयुते ज्वरे चिकित्सामाह—

भार्ङ्गीगुडूचीघनदारुसिंहीशुण्ठीकणापुष्करजः कषायः ॥
ज्वरं निहंति श्वसनं क्षिणोति क्षुधां करोति प्ररुचिं तनोति३९

भार्ङ्गीति ॥ भार्ङ्ग्याद्यष्टानामोषधीनां कषायः ज्वरं नितरां हन्ति । श्वसनं श्वासं क्षिणोति नाशयति क्षुधां करोति प्ररुचिं प्रकृष्टमन्नाभिलाषं तनोति विस्तारयति । तत्र भार्ङ्गी ब्राह्मणयष्टिका, गुडूची तन्त्रिका, घनो मेघनामा, दारु देवदारु, सिंही कंटकारी, शुण्ठी महौषधम्, कणा कृष्णा, पुष्करजः पौष्करमूलम् ॥ ३९ ॥

भाषार्थः—भांडगीकी जड गिलोय, नागरमोथा, देवदारु, बडी कटेरी, सोंठ, पीपल और पौहकरमूल इन आठ औषधियोंका

काढा ज्वरको नष्ट करता है, श्वासको हरता है, भूख लगाताहै और अन्नमें रुचि बढाता है ॥ ३९ ॥

मम द्वयं विस्मयमातनोति तिक्ताकषायोमुखतिक्तताघ्नः ॥ निपीडितोरोजसरोजकोषा योषा प्रमोदं प्रचुरं प्रयाति ।४०।

ममेति ॥ मम लोलिम्बराजस्य वस्तुद्वयं विस्मयमाश्चर्यमातनोति उत्पादयति। किं तत् द्वयम् तिक्ताकषायो मुखतिक्तताघ्नः तिक्ता कटुकी तस्याः कषायः क्वाथः मुखतिक्तताघ्नः मुखकटुत्वनाशको भवतीत्येकम् । प्रलापो वक्त्रकटुतेत्यादि निदानोक्तत्वात् मुखतिक्तता पित्तज्वरकृता बोध्या । पुनश्च निपीडितोरोजसरोजिकोषा नितरां पीडितः करेण उरोजसरोजयोः कुचकमलयोः कोषः कुड्मलो यस्याः सा योषा स्त्री प्रचुरं प्रभूतं बहुतरं प्रमोदं हर्षं प्रयाति प्राप्नोतीत्येतद्द्वयमित्यर्थः ॥ ४० ॥

भाषार्थः—लोलिम्बराज कहते हैं कि दोबातें मेरे आश्चर्यको बहुतही बढाती हैं एक तो कडवी कुटकीका काढा मुखके कडवापनको दूर करताहै, और दूसरा यह कि ज्यों ज्यों नवीन स्त्रीके कुचकमलमंडल मर्दन किये जाते हैं त्यों त्योंही उसको अत्यानन्द होता है, अर्थात् कुटकीका काढा पीनेसे मुखका कडवापन जाता रहताहै ॥ ४० ॥

इदानीं श्लेष्मकासश्वासमुखामयकण्ठपीडाचिकित्सामाह—

क्वाथः कट्फलकत्तृणाब्दधनिकाशृंग्युग्रगंधाभयाभार्ङ्गीपर्पटविश्वदेवतरुजो बाह्लीकमध्वान्वितः ॥ कासश्वासमुखामय ज्वरबलश्लेष्मप्रकोपं हरेत्तद्वत्कोमलकण्ठि कण्ठजनितां पीडां च जेह्रीयते ॥४१ ॥ गम्यते क्व गजगामिनि त्वया मद्वचः शृणु कवीन्द्र कथ्यताम् ॥ सांध्यसैंधवमरोचकापहं मातुलिंगफलकेसरं स्मृतम् ॥ ४२ ॥

क्वाथ इति ॥ बाह्लीकमध्वन्वितः कट्फलकणाब्दधनिकाशृङ्ग्युग्रगंधाभयाभार्ङ्गीपर्पटविश्वदेवतरुजः क्वाथः कासश्वासमुखामयज्वरबलश्लेष्मप्रकोपं हरेत् । तत्र

बाह्लीकं हिंगु तच्च शाणमितम् मधु माक्षिकं तच्च तोलकद्वयात्मककर्षमितम्, कट्फलः कैटर्यः, कत्तृणं पौरम्, अब्दो मुस्ता, धनिका धन्याकम्, शृङ्गी कर्कटशृङ्गी, उग्रगन्धा वचा, अभया हरीतकी, भार्ङ्गी ब्राह्मणयष्टिका, पर्पटः पित्तारिः, विश्वं शुंठी, देवतरुर्देवदारुः । एकादशभिरेतैर्द्रव्यैर्जनिते क्वाथे पूते च सति तत्र पश्चाद्धिङ्गुमधुनी प्रक्षेप्तव्ये । स पीतः सन् कासादीन् हरेत् तत्र कासः क्षवथुः श्वासः श्वासरोगः मुखामयो गलशुण्ड्यादिरूपो मुखरोगः ज्वरबलं ज्वरवेगः श्लेष्मप्रकोपं कफवृद्धिम् हे कोमलकंठि मृदुगलध्वनिविशिष्टे ! तद्वत् तथैव कण्ठजनितां गलोद्भवां पीडां व्यथां च जेहीयते अतिशयेन नाशयति । 'कोमलं मृदुले जले' इति । 'कण्ठो गले संनिधाने ध्वनौ मदनपादपे' इति च मेदिनीकारः ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

भाषार्थः–कायफल, कत्तृण, नागरमोथा, धानियां, काकडासिंगी, बच, छोटी हरड, भांडगी, पित्तपापडा, सोंठ, देवदारु इन ग्यारह औषधियोंका काढा बनाय ऊपरसे फूलीहुई हींग और शहत मिलाय पीनेसे खांसी, श्वास, मुखरोग, ज्वर, वातकफ, ये दूर होजातेहैं और हे कोमलकंठवाली ! यही कंठरोगोंके दूरकरनेमें भी एकही है ॥ ४१ ॥ हे गजगामिनि ! कहां जाती है ? सुन तो सही, घृत, सेंधानमक और बिजौरेकी केसर मिलाकर चाटनेसे अरुचि जातीरहती है ॥ ४२ ॥

अरुचिं द्यति लुङ्गकेसरं सघृतं सैन्धवचूर्णमिश्रितम् ॥
रुचिमम्बुरुहस्य तन्वि ते नयनं खञ्जनगञ्जनं यथा ॥४३॥

अरुचिमिति ॥ हे तन्वि हे कृशाङ्गि ! सघृतं साज्यं सैन्धवचूर्णमिश्रितं शीतशिवरजोयुक्तं लुङ्गकेशरं बीजपूरकेसरं बीजपूरकेशरयोर्घृतेन सहावलेहः अरुचिमन्नानभिलाषस्वरूपम् रोगं द्यति खण्डयति । अत्र दृष्टान्तः । हेतन्वि ! खञ्जनगञ्जनं खञ्जनं खञ्जरीटाख्यपक्षिणं गञ्जयति समदत्वात् तिरस्करोति एवंभूतं ते नयनं लोचनं यथा अम्बुरुहस्य अम्भोजस्य रुचिं शोभां खण्डयति तथेत्यर्थः ॥ ४३ ॥

भाषार्थः–हे कृशांगी ! बिजौरेकी केसरमें घी और सेंधानमक मिलाकर चाटना अरुचिको ऐसे दूर करदेता है जैसे खंजनमदगंजन तेरे नेत्र कमलकी कान्तिको हरलेते हैं ॥ ४३ ॥

अथ सकलसन्निपातानां बुद्धिभ्रंशस्वेदादीनां च नाशाय क्काथमाह ग्रन्थीत्यादिश्लोकाभ्याम्–

ग्रन्थीन्द्रजाऽमरपुरक्रिमिशत्रुभार्ङ्गीभृङ्गत्रिकट्वनलकट्फलपौष्कराणाम् ॥ रास्नाभयाबृहतिकाद्वयदीप्यभूतकेशीकिरातकवचाचविकावृकीणाम् ॥ ४४ ॥ क्काथो हन्यात्सन्निपातान्समस्तान् बुद्धिभ्रंशस्वेदशैत्यप्रलापान् ॥ शूलाध्मानं विद्रधिश्लेष्मवातान् वातव्याधीन् सूतिकानां च तद्वत् ॥ ४५ ॥ युग्मम् ॥

ग्रन्थ्यादीनां त्रयोविंशतिद्रव्याणां क्काथः समस्तान् सकलान् सन्निपातान् त्रिदोषजनितान् बुद्धिभ्रंशं चित्तवैकल्यं स्वेदं प्रस्वेदं शैत्यं शरीरे शीतभावं प्रलापमनर्थभाषणं शूलं वातेन जठरपीडां आध्मानं वातनिरोधजं सवेदनोदरपूर्णत्वम् । शूलाध्मानयोर्द्वन्द्वैक्यम् । विद्रधिं हृद्व्रणं श्लेष्मवातं कफयुक्तवायुं तद्वत् तथैव सूतिकानां नवप्रसूतानां वातव्याधिं वायुरोगं च हन्यात् नाशयेत् । हन्यादित्यस्य सर्वत्र सन्निपातादौ सम्बन्धः । तत्र ग्रन्थिः पिप्पलीमूलं इन्द्रजः इन्द्रयवः अमरः कुलिशवृक्षः सीहुण्डः अमरो देवदार्विति कश्चित् । पुरो गुग्गुलुः क्रिमिशत्रुः विडङ्गः भार्ङ्गी फञ्जिका भृङ्गं गुडत्वक् त्रिकटु विश्वोपकुल्या मरिचम् अनलश्चित्रकः कट्फलः श्रीपर्णिका पौष्करं पुष्करमूलं रास्ना नाकुली अभया पञ्चरेखाहरीतकी बृहतिकाद्वयं कण्टकारीयुग्मं दीप्यो यवानी भूतकेशी जटामांसी किरातकश्चिरातिक्तः वचा षड्ग्रन्था चविका चव्यं वृकी पाठा । अथ सन्निपातस्य सामान्यलक्षणमाह–'क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसंधिशिरोरुजा । सास्रावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने ॥ सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कण्ठः शूकैरिवावृतः । तंद्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिर्भ्रमः ॥ परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्ताङ्गता परम् । ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥ शिरसो लोठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा । स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद्दर्शनमल्पशः ॥ कृशत्वं नातिगात्राणां सततं कण्ठकूजनम् । कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानां च दर्शनम् ॥ मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च । चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपातज्वराकृतिः' इति । असाध्यसन्निपातस्य लक्षणमाह–'दोषे विवृद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसंपूर्णलक्षणः । सन्निपातज्वरोऽसाध्यः

कृच्छ्रसाध्यस्त्वतोऽन्यथा ॥ अथावधिमाह–'सप्तमे दिवसे प्राप्ते दशमे द्वादशेपि वा । पुनर्घोरतरो भूत्वा प्रशमं याति हंति वा ॥ सप्तमीद्विगुणा चैव नवम्येकादशी तथा । एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च ॥ सन्निपातज्वरस्यांते कर्णमूलेषु दारुणः । शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते' इति माधवः ॥४४॥४५॥

भाषार्थः–पीपलामूल, इन्द्रजौ, अमर (देवदारु वा सेहुंड), गूगल, बायविडंग, भारंगी, दालचीनी, सोंठ, कालीमिरच, पीपल, चीता, कायफल, पौहकरमूल, रायसन, हरडकी छाल, छोटी कटेरी, बडी कटेरी, अजवायन, जटामांसी, चिरायता, बच, चव्य, पाठ, इन तेईस द्रव्योंका काथ पीनेसे सबप्रकारके सन्निपात, बुद्धिका बिगड़ना, पसीना, ठंडसीलगना, प्रलाप, शूल, अफरा, विद्रधि, कफरोग, बातरोग और प्रसूती स्त्रियोंके बातरोग नष्ट होजाते हैं॥ ४४ ॥ ४५ ॥

काथान्तरमाह––

अर्कानन्ताकिरातामरतरुरसनासिन्दुवारोग्रगन्धातर्कारीशिग्रुपञ्चोषणघुणदयितामार्कवाणां कषायः ॥ सद्यस्तीव्रांस्त्रिदोषानपहरति धनुर्मारुतं दन्तबन्धं शैत्यं गात्रेषु गाढं श्वसनकसनकं सूतिकावातरोगान् ॥ ४६ ॥

अर्कानन्तेत्यादिना ॥ अर्कादीनां षोडशद्रव्याणां कषायः क्वाथः पीतः सन् तीव्रान् दुःसहान् त्रिदोषान् सन्निपातान् धनुर्मारुतं धनुर्वातं दन्तबन्धं दन्तानां रदनानां बन्धो बन्धनं गात्रे शरीरे गाढं दुःसहं शैत्यं कम्पं श्वसनं श्वासं कसनं कासम् सूतिकावातरोगान् प्रसूतस्त्रीवातव्याधीन् सद्यस्तत्कालमपहरति । तत्र अर्कः अर्कमूलम् अनन्ता ताम्रमूलायासः किरातश्चिरतिक्तः अमरतरुः देवदारुः रसना रास्ना सिन्दुवारः सिन्धुकः उग्रगन्धा वचा तर्कारी अरणी अग्निमंथः शिग्रुः शोभाञ्जनः पञ्चोषणं पञ्चकोलम् । तद्यथा । 'पञ्चकोलं कणामूलकृष्णाचव्याग्निनागरैरिति' । घुणदयिता अतिविषा मार्कवो भृङ्गराजः ॥ ४६ ॥

भाषार्थः–आककी जड, जवासा, चिरायता, देवदारु, रायसन, संभालूके पत्ते, बच, अरनी, संहजना, पीपलामूल, पीपल, चव्य, चीता, सोंठ, अतीस और भांगरा, इन सोलह औषधोंका काढा पीनेसे दारुण त्रिदोष, धनुर्वात, दांतोंका जकडना, देहमें अत्यन्त कमकमाहट, श्वास, खांसी तथा प्रसूता स्त्रियोंके होने वाले वातरोग शीघ्र नष्ट होजाते हैं ॥ ४६ ॥

अपरं सकलसन्निपातापहं क्काथमाह–

तिक्तातिक्तकपर्पटामृतशठीरास्नाकणापौष्करत्रायन्तीबृहतीसुरौषधशिवादुस्पर्शभार्ङ्गीकृतः ॥ क्काथो नाशयति त्रिदोषनिकरं स्वापं दिवा जागरं नक्तं तृण्मुखशोषदाहकसनं श्वासानशेषानपि ॥ ४७ ॥

तिक्तेति ॥ तिक्तादिपञ्चदशौषधैर्विहितः कषायः सर्वान् सन्निपातान् स्वापादींश्च नाशयति । तत्र तिक्ता कटुकी, तिक्तको भूनिम्बः, पर्पटः पित्तारिः, अमृता गुडूची, शठी गन्धमूली, रास्ना भुजङ्गाक्षी, कणा चपला, पौष्करं पुष्करमूलं, त्रायन्ती त्रायमाणा, बृहती कण्टकारी, सुरो देवदारुः, औषधं शुण्ठी, शिवा हरीतकी, दुःस्पर्शो धन्वयासः, भार्ङ्गी ब्राह्मणयष्टिका, एतैः पञ्चदशभिर्निर्मितः कषायः त्रिदोषनिकरं सन्निपातसमूहम्, दिवास्वापं दिवसे शयनं, नक्तं जागरं रात्रौ जागरणम्, तृण्मुखशोषदाहकसनं तृट् पिपासा मुखशोषो वक्त्रस्य शोषणं दाहो गात्रसन्तापः कसनं कासः एषां द्वन्द्वैक्यम् । अशेषान् निःशेषान् महाश्वासादीन् नाशयति । सन्निपाता यथा माण्डवीये । 'शीघ्रगस्तान्त्रिकश्चित्तविभ्रमः कण्ठकुब्जकः । कर्णको जिह्मगश्चैव रुग्दाहश्चान्तकस्तथा । भग्ननेत्रो विलापश्च प्रलापः शीतलाङ्गकः । अभिन्यासश्चेति विद्यात्सन्निपातांस्त्रयोदशेति' । एतेषां लक्षणान्याह चक्रपाणिदत्तः । 'सदास्यं श्लेष्मणा पूर्णं शूलः कासोऽतिवेदना । शोथश्च लक्षणान्येवं शीघ्रगे सान्निपातके ॥ आतितन्द्रा ज्वरः श्वासः कासस्तापोऽतिसारकः । स्थूलकण्ठः सिता श्यामा जिव्हा कण्ठेच कूजति ॥ श्रुतिरल्पा चेति विद्यात्तांत्रिके सान्निपातिके । मदो मोहो भ्रमस्तापो हास्यशीतप्रलापवान् ॥ नित्यं वैकल्पिता पीडा विकटाक्षनिरीक्षणम् । लक्षणैः सन्निपातोऽयं ज्ञातव्यश्चित्तविभ्रमः ॥ कण्ठग्रहो ज्वरो मूर्च्छा दाहः कम्पो विलापनम् । मोहस्तापः शिरो-

र्तिश्च वातार्तः प्रलयं गतः ॥ कण्ठकुब्जं सन्निपातं कष्टसाध्यं विनिर्दिशेत् । ज्वरः कर्णान्तशोथश्च श्वासः कम्पः प्रलापनः ॥ स्वेदः कण्ठग्रहस्तापस्तृण्मोहो भयमेव च । कर्णिके सन्निपाते च लक्षणानि भवन्ति हि ॥ सङ्कटा कठिना जिव्हा कासः श्वासोऽतिविव्हलः । मूको बधिरता तापो बलहानिश्च लक्षणम् ॥ जिह्मगः सन्निपातोऽयं कष्टात् कष्टतरः परः । मोहस्तापः प्रलापश्च व्यथा कण्ठे भ्रमः श्रमः ॥ वेदना च तृषा जाड्यं श्वासाश्च लक्षणैरिमैः । कष्टात्कष्टतरो ज्ञेयो रुग्दाहः सान्निपातिकः ॥ दाहो मोहः शिरःकंपो हिक्का श्वासोऽङ्गमर्दनम् । संतापश्चान्तको ज्ञेयः सन्निपातोऽतिमारकः ॥ श्वसनं लोचने भुग्ने स्मृतिः स्थूला ज्वरोऽधिकः । मोहः प्रलपनं कम्पो भ्रमो निद्रा च लक्षणैः ॥ ज्ञातव्यो भुग्ननेत्रोऽयं सन्निपातः क्षयङ्करः । रक्तनिष्ठीवनं मूर्च्छा ज्वरो मोहस्तृषा भ्रमः ॥ वान्तिर्हिक्कातिसारश्च संज्ञानाशो हृदि व्यथा । मण्डलं श्यावरक्तञ्च देहेषु लक्षणैरिमैः ॥ ज्ञातव्यः सन्निपातोऽयं रक्तष्ठीवी निपातकः । प्रलापतापकर्णार्तिप्रज्ञानाशोऽतितापवान् ॥ ज्ञेयः प्रलापकश्चिह्नैः सन्निपातोतिमारकः । शरीरं हिमवच्छीतमतिसारश्च कम्पनं ॥ कर्णनादो हस्ततापो हिक्का श्वासः क्रमोत्तरम् । सर्वाङ्गशीतलो हन्ति शीताङ्गः सन्निपातकः ॥ त्रिदोषं च मुखं शुष्कं निद्रावैकल्यकष्टवाक् । निश्चेतनमतिश्वासो मन्दाग्निर्बलहीनता ॥ मृत्युतुल्यमभिन्यासं सन्निपातं च लक्षयेदिति'। श्वासभेदांस्तेषां लक्षणानि चाह भावमिश्रः । 'महोर्ध्वच्छिन्नतमकक्षुद्रभेदैस्तु पञ्चधा । भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥ उद्धूयमानवातो यः शब्दवद्दुःखितो नरः । उच्चैः श्वसिति सन्नद्धो मत्तर्षभ इवानिशम् ॥ प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथा विभ्रान्तलोचनः । विवृताक्ष्याननो बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् । दीनः प्रश्वसितं चास्य दूराद्विज्ञायते भृशम् । महाश्वासोपसृष्टस्तु क्षिप्रमेव विपद्यते ' १ । अस्यार्थः । उद्धूयमानो वातः ऊर्ध्वं नीयमानो वातो यस्य सः शब्दवत् सशब्दं यथा स्यात् । कीदृक् स शब्दः तद्बोधयितुमाह । मत्तर्षभ इव उच्चैः श्वसितीत्यन्वयः । सन्नद्धः आनद्धः । आनाहयुक्त इति यावत् । ज्ञानं शास्त्रं विज्ञानं तदर्थविनिश्चयः । विशीर्णवाक् स्खलितवचनः दीनः ग्लानः । मारकश्चायं महाश्वासः । ऊर्ध्वश्वासमाह । 'ऊर्ध्वं श्वसिति योत्यर्थं न च प्रत्याहरत्यधः । श्लेष्मावृतमुखस्रोतः क्रुद्धगन्धवहार्दितः ॥ ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यंस्तु विभ्रान्ताक्ष इतस्ततः । संमुह्यन्वेदनार्तश्च शुष्कास्यो रतिपीडितः ॥ ऊर्ध्वश्वासे प्रकुपिते ह्यधः श्वासो निरुध्यते । मुह्यतस्ताम्यतश्चोर्ध्व श्वासस्तस्यैव हन्त्यसून् ' २ । अस्यार्थः । सर्वेषु श्वासेषु ऊर्ध्वं श्वसते अत्रात्यर्थमिति विशेषः । नच प्रत्याहरत्यधः न श्वासमधः करोति । श्लेष्मावृतेत्यादि । श्लेष्मणा आवृतं यन्मुखं स्रोतांसि च तैः क्रुद्धो यो गन्धवहस्तेनार्दितः विपश्यन् इतस्ततो विकृतं यथा स्यादेवं पश्यन् अधःश्वासो निरुध्यते श्वासो नाधः प्रवर्तते इति । ऊर्ध्वश्वासस्यारिष्टस्य लक्ष-

समाह । मुह्यतो मोहं प्राप्नुवतश्च ऊर्ध्वश्वासोऽसून् प्राणान् हंति । तस्यैवेति ननु मोहग्लानिरहितस्य । छिन्नश्वासमाह । 'यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणेन पीडितः । न चाश्वसिति दुःखार्तो मर्मच्छेदरुजार्दितः ॥ आनाहस्वेदमूर्च्छार्तो दह्यमानेन बस्तिना । विप्लुताक्षः परिक्षीणः श्वसन् रक्तैकलोचनः ॥ विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन्नरः । छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः स शीघ्रं विजहात्यसून्' ३ । अस्यार्थः । विच्छिन्नं सविच्छेदं सर्वप्राणेन यावद्बलेन मर्मच्छेदरुजार्दितः हृदयाशिरश्छेदवेदनयैव पीडितः दह्यमानेन बस्तिनोपलक्षितः विप्लुताक्षः अश्रुपूर्णनेत्रः विचेताः उद्विग्नचित्तः छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः यस्तु श्वसिति विच्छिन्नमित्यादिलक्षणयुक्तो यः स नरश्छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः पीडितो बोद्धव्य इति । मारकश्चायं विच्छिन्नश्वासः । तमकश्वासमाह । 'प्रतिलोमं यथा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते । ग्रीवा शिरश्च सङ्गृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥ करोति पीनसं तेन कण्ठे घुर्घुरकं तथा । अतीव तीव्रवेगं च श्वासं प्राणप्रपीडकम् ॥ प्रताम्यति स वेगेन त्रस्यते सन्निरुध्यते । प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः ॥ श्लेष्मणा मुच्यमानेन भृशं भवति दुःखितः । तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहूर्तं लभते सुखम् ॥ तथास्योद्ध्वंसते कण्ठः कृच्छ्राच्छक्नोति भाषितुम् । न चापि निद्रां लभते शयानः श्वासपीडितः ॥ पार्श्वे तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः । आसीनो लभते सौख्यमुष्णं चैवाभिनन्दति ॥ उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्तिमान् । विशुष्कास्यो मुहुः श्वासो मुहुश्चैवावधम्यते ॥ मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्धते । स याप्यस्तमकः श्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः' ४ । अस्यार्थः । सङ्गृह्य व्यथया समुदीर्य वर्द्धयित्वा पीनसं नासास्रावं तेन श्लेष्मणा घुर्घुरकं घुर्घुरशब्दं प्राणपीडकं प्राणाधिष्ठानहृदयप्रपीडकं प्रताम्यति । तमांसि प्रविशतीव । वेगेन श्वासवेगेन । सन्निरुध्यते निश्चेष्टो भवतीति चक्रदत्तः । सन्निरुध्यते श्वास इति जैय्यटः । श्लेष्मणा मुच्यमानेन सुखं सुखमिव उद्ध्वंसते व्यथितो भवति । शयानः शय्यानिहिताङ्गः अवगृह्णाति पीडयाति । उष्णं चैवाभिनन्दतीत्यनेन तमको वातकफारब्ध इति बोद्धव्यम् । उच्छ्रिताक्षोऽश्रुनाक्षः ललाटेन स्विद्यता उपलक्षितः अवधम्यते गजारूढस्येव सर्वगात्राणि चाल्यत इति । क्षुद्रश्वासमाह—'रूक्षायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रो वात उदीरयन् । क्षुद्रश्वासेन सोऽत्यर्थं दुःखेनाङ्गप्रवर्धकः ॥ हिनस्ति न च गात्राणि न च दुःखो यथेतरे । न च भोजनपानानां निरुणद्ध्युचितां गतिम् ॥ नेन्द्रियाणां व्यथां चापि काञ्चिदुत्पादयेद्रुजम् । स साध्य उक्तो बलिनः सर्वे वा व्यक्तलक्षणाः' ५ । अस्यार्थः । क्षुद्रः अल्पनिदानलिङ्गः । उदीरयन्नूर्ध्वं गच्छन् । दुःखः दुःखप्रदः । सर्वे महाश्वासादयोऽपीति ॥ ४७ ॥

भाषार्थः–कुटकी, चिरायता, पितपापडा, गिलोय, कचूर, रायसन, पींपल, पौहकरमूल, त्रायमाण, कटेरी, देवदारु, सोंठ, हरडकी छाल, जवासा और भारंगी इन पन्द्रह औषधियोंका काढा पीनेसे सब प्रकारके सन्निपात, दिनका सौना, रात्रिका जागना, प्यास, मुखका सूखना, दाह, खांसी और सब प्रकारके श्वासरोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ४७ ॥

कालेन सह सन्निपातस्याभेदं वदन् तज्जयकर्तुर्वैद्यस्य प्रशंसामाह त्रिभिः–

सन्निपातस्य कालस्य कश्चिद्भेदो न विद्यते ॥ चिकित्सको जयेद्यस्तं तस्मात्कोऽस्ति प्रतापवान् ॥ ४८॥
सन्निपातोदधौ मग्नानुद्धरेद्यः कृपाकरः ॥ तस्मै किं किं न देयं स्याद्वद कोविदनन्दिनि ॥ ४९ ॥

सन्निपातस्येति ॥ सन्निपातस्य त्रिदोषजनितव्याधेः कालस्य मृत्योश्च कश्चित् कश्चन भेदो विशेषो न विद्यते नास्ति । यो वैद्यः तं सन्निपातं जयेत् पराङ्मुखीकुर्यात् तस्माद्भिषजोऽन्योऽपरः प्रतापवान् नाममात्रोच्चारणेन वैरिविदारणकर्ता कोऽस्ति न कोऽपीत्यर्थः । उक्तं च– 'मृत्युना सह योद्धव्यं सन्निपातचिकित्सुना । यस्तु तत्र भवेज्जेता स जेताऽमयसंकुलम्' इति ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

भाषार्थः–सन्निपात और कालमें कुछ भी भेद नहीं है अर्थात् जिसे सन्निपात होगया हो उसे मरा समझो और जो वैद्य सन्निपातके रोगीको बचालेता है उससे प्रतापी कोई नहीं है ॥ ४८ ॥ हे कोविदनंदिनी! जो दयावान वैद्य सन्निपात रूपी समुद्रमें डूबेहुए रोगीको निकाल लेताहै, कह तो सही उसको क्या क्या न देना चाहिये अर्थात् जो मांगे सोई देवै ॥ ४९ ॥

त्रिदोषाजगरग्रस्तं मोचयेद्यस्तु वैद्यराट् ॥
आत्मापि तस्मै दातव्यः किं पुनः कनकादयः ॥ ५० ॥

त्रिदोषेति ॥ त्रिदोषाजगरग्रस्तं त्रिदोषः सन्निपातः स एव अजगरः सर्पविशेषो वाहसः तेन ग्रस्तं गिलितं नरं यो वैद्यराट् मोचयेत् तस्मै वैद्यराज्ञे आत्मा देहोऽपि दातव्यः देयः । कनकादयः पुनः किम् कनकादीनां पुनः का वार्तेति ॥ ५० ॥

भाषार्थः–जो वैद्यराट् त्रिदोषरूपी अजगरसे पकडे हुए रोगीको छुडाता है उसको अपनी देह भी देदे तौ थोडा है. फिर सुवर्णादिक तौ किसी गिनतीहीमें नहीं हैं ॥ ५० ॥

सन्निपातानन्तरं कर्णमूले शोथो भवति तदुपायमाह—

यः शोफः श्रुतिमूलजः सुकठिनः शान्ते त्रिदोषज्वरे रक्तं तत्र जलौकया परिहरेत्सर्पिः पिबेच्चातुरः ॥ रास्नानागरलुङ्गमूलहुतभुग्दार्व्यग्निमन्थैः समैर्लेपः स्यादरविन्दवन्द्यनयने शोथव्यथाध्वंसनः ॥ ५१ ॥

यः शोफ इति ॥ त्रिदोषज्वरे सन्निपातज्वरे शान्ते निवृत्ते सति श्रुतिमूलजः कर्णपार्श्वोद्भवो यः शोफः शोथः । कीदृशः शोफः । सुकठिनः अतिकठोरः । तत्र जलौकया रक्तपया रक्तं रुधिरं परिहरेत् निष्कासयेत् । जलौकयेति जातावेकवचनं । आतुरो रोगी सर्पिः घृतं च पिबेत् । हे अरविन्दवन्द्यनयने अरविन्दैर्महोत्पलैर्वन्द्ये वन्दनीये नयने लोचने यस्याः तत्सम्बोधने हे अरविन्दवन्द्यनयने इति । शोथव्यथाध्वंसनः शोफपीडाविनाशनः रास्नादिषड्भिर्लेपः स्यात् । तत्र रास्ना नाकुली, नागरं शुण्ठी, लुङ्गमूलं बीजपूरब्रध्नम्, हुतभुक् चित्रकः, दार्वी दारुहरिद्रा, अग्निमन्थो गणिकारिका, एतैः षड्भिः समैः समानैर्लेपो विहितः । अत्राह वाग्भटः 'सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः । शोफः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते' इति । सुश्रुते तु विशेष उक्तः–' ज्वरादितो वा ज्वरमध्यतो वा ज्वरान्ततो वा श्रुतिमूलशोफः । क्रमादसाध्यः खलु कष्टसाध्यः सुखेन साध्यः कथितो मुनींद्रैः ' इति ॥५१॥

भाषार्थः–सन्निपातज्वरके दूर होनेपर जो कानकी जड़में बडी बडी सूजन हो जाती है, जिसे कर्णमूल कहते हैं, इस सूजनमें प्रथम जोक लगवाकर रुधिर निकलवादे फिर रोगीको घृतपान करावे । तथा हे कमलदलपूजितनेत्रे ! रास्ना, सोंठ, बिजोरे-

की जड, चीता, दारुहल्दी, और अरनी इन सबको बराबर २ लेकर लेपकरनेसे सूजनकी पीडा घटजाती है ॥ इसीके विषयमें बाग्भट लिखताहै, कि सन्निपातज्वरके पीछे जो कर्णमूलमें कठोर गांठ होती है, उससे कोईही बचताहै, परन्तु सुश्रुत संहितामें इतना विशेष लिखाहै, कि जो गांठ ज्वरके आदिमें होती है वह असाध्य है, ज्वर आनेपर जो गांठ होती है वह कष्टसाध्य है और जो ज्वरके अन्तमें होती है वह सुसाध्य होती है ॥ ५१ ॥

अथ शिरःपार्श्वस्थितशूलकासश्वासजीर्णज्वराणां निवृत्तेरुपायमाह—

शूलात्पार्श्वशिरःस्थितात्कसनतः श्वासाच्च जीर्ण-
ज्वरान्मुक्तः स्यात्पुरुषः पयः परिपिबन्पञ्चाङ्घ्रिणा
पाचितम् ॥ एकासौ गुडपिप्पलीविजयते जीर्ण-
ज्वराजीर्णरुक्क्षुन्मांद्यारुचिपाण्डुजन्तुकसनश्वासा-
न्किमन्यौषधैः ॥ ५२ ॥

शूलादिति ॥ पुरुषो मनुष्यः पञ्चाङ्घ्रिणा शालपर्ण्यादिलघुपञ्चमूलेन पाचितं पक्वं पयो जलं परिपिबन् सम्यक् पानं कुर्वन् पार्श्वशिरःस्थितात् मस्तकान्तस्थात् शूलत् पीडायाः कसनतः कासात् श्वासात् श्वासरोगात् च पुनः जीर्णज्वरात् त्रिसप्ताहातीतान्महागदाच्च मुक्तः स्यात् रहितो भवति । अपि च हे अरविन्दवन्द्यनयने ! असौ गुडपिप्पली गुडेन शिशुप्रियेण युक्ता पिप्पली कृष्णा एका एकाकिनी जीर्णज्वराजीर्णरुक्क्षुन्मान्द्यारुचिपाण्डुजन्तुकसनश्वासान् यदि विजयते जयति तर्ह्यन्यौषधैः गुडपिप्पल्यतिरिक्तैर्भेषजैः किम् न किमपि फलमित्यर्थः । तत्र पिप्पल्यपेक्षया गुडो द्विगुणो योज्य इति मर्यादा । जीर्णज्वरमाह—'त्रिसप्ताहे व्यतीते तु ज्वरो यस्तनुतां गतः । प्लीहाग्निमान्द्ये कुरुते स जीर्णज्वर उच्यते' इति । अजीर्णरुक् अपाकरोगः, क्षुन्मान्द्यं क्षुधो बुभुक्षायाः मन्दत्वम्, अरुचिः अन्नादन्नाभिलाषे सत्यप्यभ्यवहारासामर्थ्यरूपो रोगः, पाण्डुः त्वङ्नेत्रादीनां पीतत्वजनको रोगविशेषः, जन्तुः उदरे कृमिजनको रोगः, कसनं कासः, श्वासः श्वासरोगः ॥ ५२ ॥

भाषार्थः—जो मनुष्य लघुपंचमूल (शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटीकटेरी, बडी कटेरी और गोखरू) का काथ पीलेता है उसका पसलीका दर्द, सिरका दर्द, खांसी, श्वास और जीर्णज्वर नष्ट हो जाते हैं, और गुडमें मिली हुई अकेली पीपलही जीर्णज्वर, अजीर्ण, मन्दाग्नि, अन्नमें अरुचि, पांडुरोग, कृमिरोग, खांसी और श्वासको दूर कर देती है, इसके सिवाय और औषधीयोंका सेवनही व्यर्थ है ॥ ५२ ॥

अथ कफकृते जीर्णज्वरे पाचनमाह—

जीर्णज्वरं कफकृतं कणया समेतः छिन्नोद्भवोद्भवकषायक एष हन्ति ॥ रामो दशास्यमिव राम इव प्रलम्बं रामो यथा समरमूर्धनि कार्तवीर्यम् ॥ ५३ ॥

जीर्णज्वरमिति ॥ कणया पिप्पलीचूर्णेन समेतः संयुक्तः एषः पुरोवर्ती छिन्नोद्भवोद्भवकषायकः छिन्नोद्भवाया गुडूच्या उद्भवो जन्म यस्य एतादृशः कषायकः कषाय एव कषायकः क्वाथः कफकृतं श्लेष्मकृतम् जीर्णज्वरं ज्वरागममिदं परित्यज्य त्रिसप्ताहव्यतीतं ज्वरं हन्ति हिनस्तीत्यर्थः । अत्र दृष्टान्तः । कः कमिव रामो दाशरथिः दशास्यं रावणमिव । पुनः रामो हलायुधः प्रलम्बमिव प्रलम्बासुरं यथा । पुनश्च समरमूर्धनि सङ्ग्रामप्रमुखे रामो जामदग्न्यः कार्तवीर्यं यथा हैहयमिवेति ॥ ५३ ॥

भाषार्थः—पीपलका चूर्ण मिला हुआ गिलोयका काथ कफसे उत्पन्न हुए ज्वरको ऐसे नष्ट कर देता है जैसे रामने रावणको, बलरामने प्रलंबसुरको और परशुरामने सहस्त्रबाहुको नष्ट कियाथा ॥ ५३ ॥

पुनरन्यमाह—

पञ्चमूलीकषायस्य सकृष्णस्य निषेवणात् ॥
जीर्णज्वरः कफकृतो विदधाति पलायनम् ॥ ५४ ॥

पञ्चमूलीति ॥ सकृष्णस्य पिप्पलीचूर्णयुक्तस्य पञ्चमूलीकषायस्य लघुपञ्चमूल्याः क्वाथस्य निषेवणात् तत्पानाभ्यासात् कफकृतः श्लेष्मप्रकोपाज्जातः जीर्णज्वरः पलायनमपयानं विदधाति रचयति पलायतीत्यर्थः । उक्तं च–'पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः क्वाथश्छिन्नरुहोद्भवः । जीर्णज्वरकफध्वंसी पञ्चमूलीकृतोऽथवा । कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्डुकृमिरोगनुत्' इति ॥ ५४ ॥

भाषार्थः–पंचमूलके क्वाथमें पीपल मिलाकर पीनेसे कफसे उत्पन्न जीर्णज्वर जाता रहता है ॥ ५४ ॥

अथ जीर्णविषमसन्निपातज्वराणां शान्त्युपायमाह—

**शठी शुण्ठी रेणुः सुरतरुरनन्ता च बृहती घनस्ति-
क्ता तिक्तं खलु नवभिरेभि विरचितः ॥ कषायः
पीतोऽयं मधुकणाविमिश्रः शमयति त्रिदोषं निः-
शेषं विषममपि जीर्णज्वरमपि ॥ ५५ ॥**

शठी शुण्ठीत्यादिना ॥ शठ्यादिनवभिर्द्रव्यैर्विरचितो निष्पादितः कषायः क्वाथः अयं मधुकणविमिश्रः मधु च कणा च ताभ्यां युक्तः पीतः सन् खलु निश्चयेन निःशेषं त्रिदोषमखिलं सन्निपातं विषमज्वरं चातुर्थिकादिज्वरं जीर्णज्वरमपि शमयतीत्यन्वयः । कषाये सिद्धे पूते च मधुपिप्पल्यौ पश्चात् प्रक्षेप्तव्ये । तत्र शठी गंधपलाशी, शुण्ठी विश्वभेषजम्, रेणुः पर्पटः, सुरतरुर्देवदारुः, अनन्ता दुरालभा, बृहती कण्टकारिका, घनो मुस्ता, तिक्ता कुटकी, तिक्तो भूनिम्बः । अथ विषमज्वरस्य सामान्यलक्षणमाह–'यः स्यादनियतात्कालाच्छीतोष्णाभ्यां तथैव च । वेगतश्चापि विषमो ज्वरश्च विषमो मतः' । तेषां भेदानाह । 'सन्ततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ' । तेषां लक्षणान्यप्याह– 'सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा । सन्तत्या यो विसर्गी स्यात्सन्ततः स निगद्यते । अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्तते । अन्यद्युष्कस्त्वहोरात्रादेककालं प्रवर्तते । तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः' ॥ ५५ ॥

भाषार्थः–कचूर, सोंठ, पितपापडा, देवदारु, जवासा, छोटी कटेरी, नागरमोथा, कुटकी और चिरायता इन नौ औषधीयोंका काढा शहत और पीपल मिलाकर पीनेसे सन्निपातिकज्वर, विषमज्वर और जीर्णज्वर सर्वथा जाते रहते हैं ॥ ५५ ॥

अथैकाहिकज्वरस्यौषधमाह-

वासापटोलत्रिफलाद्राक्षशम्याकनिम्बजः ॥
समधुः ससितः क्वाथो हन्यादैकाहिकं ज्वरम् ॥ ५६ ॥

वासेति ॥ वासाद्यष्टानां क्वाथः कषायः समधुः ससितश्च माक्षिकशर्कराभ्यां युक्तः पीतः सन् ऐकाहिकं दिनेदिने एककाले यः समायातः स ज्वरः ऐकाहिकस्तं हन्यात् नाशयेत् । क्वाथे सिद्धे पूते तत्र मधुसिते प्रक्षेप्तव्ये । तत्र वासा आटरूषः, पटोलः कुलकं, त्रिफला-'पथ्याविभीतधात्रीणां फलैः स्यात्त्रिफला समैः' इत्युक्ता । त्रयाणां फलानां समाहारः । अजादित्वात् टाप् द्विगोरिति च न ङीप् । द्राक्षा गोस्तनी, शम्याको व्याधिघातः, निम्बः सर्वतोभद्रः ॥ ५६ ॥

भाषार्थः-अडूसाके पत्ते, परवल, हरडा, बहेडा, आंवला, दाख, अमलतास और नीमकी छाल इनका काढा करके छानले फिर उसमें शहत और मिश्री मिलाकर पीवै तौ ऐकाहिक ज्वर जाता रहता है ॥ ५६ ॥

अथात्र तर्पणमाह—

तन्वङ्गि गङ्गोत्तरतीरभूमौ ममार हा कोऽप्यसुतस्तपस्वी ॥ जलाञ्जलिं तस्य कृते ददातु सैकाहिकः स्याद्यदि तेऽनुजन्मा ॥ ५७ ॥

तन्वंगीति ॥ हे तन्वङ्गि हे कृशावयवे ! तनूनि कृशान्यङ्गानि यस्याः । कोऽपि अज्ञातनामजात्यादिः असुतोऽविद्यमानपुत्रः तपस्वी तापसः गङ्गोत्तरतीरभूमौ भागीरथ्याः वामकूलभूमिकायां हा इति शोके ममार मृतोऽभूत् । सैकाहिकः एकाहिकेन सह वर्तमानः पुमान् यदि चेत्त तव अनुजन्मा कनीयान् भ्राता स्यात् तर्हि तस्य कृते अपुत्रतापसार्थे । कृत्यानां कर्तरि वेति षष्ठी भवति । जलाञ्जलिं ददातु । यद्वा स प्रसिद्धः कष्टत्वात् तथानुगतत्वात् विषमक्रियाकालत्वाच्च स ऐकाहिको ज्वरः यदि ते तव स्यात् तर्हि तस्य ज्वरस्य कृते तवाऽनुजन्मा कनिष्ठभ्राता जलाञ्जलिं ददातु । इति स ऐकाहिकभिन्नच्छेदत्वादर्थः गङ्गोत्तरभूमौ योऽपुत्रतापसो मृतः स तृप्यतामिदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नम इति वाक्येनाश्वत्थपत्रहस्तस्तर्पयेत् । पश्चात् 'अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च । वाराणस्यां च यद्वृत्तं तदेकाहिक संस्मर' इत्ययं श्लोकः पठनीयः ॥ ५७ ॥

भाषार्थः-सूक्ष्माङ्गि ! कोई पुत्रहीन तपस्वी गंगाके उत्तर तटकी भूमिमें मर गया है सो जो तेरे लघुभ्राताको एकाहिक ज्वर आता हो तो उसे सतिल जलांजलि देवै इससे एकाहिक ज्वर दूर हो जाता है ॥ ५७ ॥

अथ तृतीयकज्वरे पाचनमाह—

सशिशिरः सधनः समहौषधः सनलदः सकणः सपयोधरः ॥ समधुशर्करं एष कषायको जयति बालमृगाक्षि तृतीयकम् ॥ ५८ ॥

सशिशिर इति ॥ हे बालमृगाक्षि ! बालमृगस्य हरिणशिशोरक्षिणी इवाऽस्थिरे अक्षिणी नयने यस्यास्तत्सम्बोधने एषः पुरोवर्ती कषायकः क्वाथः समधुशर्करः माक्षिकेण सितया च सहितः तृतीयेऽहनि भवं । कालप्रयोजनाद्रोग इति कन् । जयति नाशयति । कथंभूतः । शिशिरं चन्दनं, धनं धन्याकं, महौषधं शुण्ठी, नलदमुशीरं, कणा मगधोद्भवा, पयोधरो मुस्ता, एतैः सपदपूर्वैः सः वर्तमानः तस्मिन्सिद्धे पूते क्वाथे मधुसितयोः प्रक्षेपः कार्यः । उक्तं च चक्रपाणिदत्तेन । 'महौषधामृतामुस्तचन्दनोशीरधान्यकैः । क्वाथस्तृतीयकं हन्ति शर्करामधुयोजितः' इति ॥ ५८ ॥

भाषार्थः-हे हरिणशावकनयनी ! लालचन्दन, धनियां, सोंठ, खस, पीपल और मोथा इनके क्वाथमें शहत और मिश्री मिलाकर पीनेसे तृतीयक अर्थात् तीसरे दिनका ज्वर जाता रहता है ॥५८॥

अथ चातुर्थिकज्वरे नस्यमाह—

चातुर्थिको नश्यति रामठस्य घृतेन जीर्णेन युतस्य नस्यात् ॥ लीलावतीनां नवयौवनानां मुखावलोकादिव साधुभावः ॥ ५९ ॥

चातुर्थिक इति ॥ हे बालमृगाक्षि ! जीर्णेन पुराणेन घृतेन हविषा युतस्य रामठस्य बाल्हीकस्य नस्यात् नस्तात् नासिकायां प्रदानादिति यावत् । नासिकायै हितं । शरीरावयवाद्यत् । नस्नासिकाया यत् नस्क्षुद्रेष्विति नासिकाया नसादेशः

तस्माचातुर्थिको ज्वरः चतुर्थेऽह्नि भवो महागदः 'दिनद्वयं त्वतिक्रम्य यः स्यात् स हि चतुर्थकः' इत्युक्तेः । चतुर्थकश्चतुर्थेह्नीत्यत्र त्वागमदिनं गृहीत्वा व्याख्येयं। नश्यति लयं प्राप्नोति । कस्मात् क इव नवयौवनानां अतिक्रान्तमुग्धभावानां युवतीनां पुनश्च लीलावतीनां क्रीडायुक्तानां विलासवतीनां वा शृङ्गारचेष्टाविशिष्टानां वा एतादृशीनां स्त्रीणां मुखावलोकात् मुखस्य वदनस्य अवलोकादवलोकनात् दर्शनात् साधुभाव इव साधोः सज्जनस्य कुलजस्य भावः स्वभावो नश्यति तथा । 'लीला-केलिर्विलासश्च शृङ्गारभावजाक्रिया' इति हेमचन्द्रः ॥ ५९ ॥

भाषार्थः-एक वर्षसे पहिलेके पुराने घीमें हींग मिलाकर सूं-घनेसे चौथैया ज्वर ऐसे नष्ट हो जाता है, जैसे नवयौवना स्त्रियोंका मुख देखनेसे सब सज्जनता उड जाती है ॥ ५९ ॥

नस्यान्तरमाह—

अखण्डितशरत्कालकलानिधिसमानने ॥
चातुर्थिकहरं नस्यं मुनिद्रुमदलांबुना ॥ ६० ॥

अखण्डितेति ॥ हे अखण्डितशरत्कालकलानिधिसमानने ! अखण्डितः सकलो यः शरत्काले वर्षावसानसमये कलानिधिश्चन्द्रः तेन समसाननं मुखं यस्यास्तत्सम्बुद्धौ । मुनिद्रुमदलाम्बुना अगस्तिवृक्षपत्रस्वरसेन नस्यं कृतं तन्नस्यं चातुर्थिकहरं चातुर्थिकज्वरस्य हंतृ भवति ॥ ६० ॥

भाषार्थः-हे शरदपूर्णचन्द्रानने ! अगस्तके पत्तोंका रस निचो-डकर नासिकाद्वारा सूंघनेसे चौथैया ज्वर जाता रहता है ॥ ६० ॥

चातुर्थिकज्वरे पाचनमाह—

सुरदारुशिवाशिवास्थिरावृषविश्वैः कथितः कषायकः ॥
मधुना सितया समन्वितः परिपीतः शमयेच्चतुर्थकम् ॥ ६१ ॥

सुरदार्वित्यादिना ॥ सुरदार्वादिषड्भिर्यः क्काथः कथितोऽभिहितः स मधुना कुसुमासवेन सितया शर्करया च समन्वितः संयुक्तो येन चातुर्थकज्वरिणा पीतः कृतपानः तस्य चतुर्थकं वा चतुर्थेऽह्नि भवं ज्वरं शमयेत् शान्तिं प्रापयेत् । तत्र सुरदारुः देवदारुः, शिवा पञ्चरेखा हरीतकी, यद्वा स्वर्णवर्णा जीवन्ती हरीतकी, शिवा आमलकी, स्थिरा शालपर्णी, वृषो वासकः, विश्वं शुण्ठी । उक्तंच 'सुरदारुशिवा

वृषविश्वशिवास्थिरवारिशृतं सितया मधुना । अपि हन्ति चतुर्थदिनप्रभवं ज्वरमाशु कुभृत्य इवाधिपतिम् ।' तथाहि चक्रपाणिदत्तः । 'वासाधात्रीस्थिरादारुपथ्यानागरसाधितः । सितामधुयुतः क्वाथश्चतुर्थकनिवारणे' इति वा । तथा वङ्गसेने चोक्तम् 'स्थिरासामलकीदारुशिवावृषमहौषधैः । शृतं शीतं जलं दद्यात् सितामधुसमन्वितम् ॥ चातुर्थिके ज्वरे तीव्रे मन्दे चाप्यथ पावके' इति ॥ ६१ ॥

भाषार्थः–देवदारु, हरड, आंवला, शालिपर्णी, अडूसा, और सोंठ इनके क्वाथमें शहत और मिश्री मिलाकर पीनेसे चातुर्थिक ज्वर दूर हो जाता है ॥ ६१ ॥

अथ शीतज्वरे भेषजमाह—

तक्रं त्र्यूषणचूर्णयुक्तमथवा मद्यं हसन्तीं सतीं तद्व-
त्कम्बलरल्लकानथ कुथां शीतातुरः शीलयेत् ॥ आ-
लिङ्गेदथवा मुहुर्दृढतरं तारुण्यमद्यालसाः काश्मीरा-
गुरुलिप्तपीवरकुचाः कामं कुरङ्गीदृशः ॥ ६२ ॥

तक्रमित्यादिना ॥ शीतातुरः शीतज्वरी त्र्यूषणचूर्णयुक्तं । त्रयाणामूषणानां विश्वोपकुल्यामरिचानां समाहारस्त्र्यूषणं तस्य चूर्णेन रजसा युक्तं मिलितमेतादृशं तक्रं चतुर्थांशजलसंयुक्तं दधि शीलयेत् सेवेत् । यतः 'तक्रं रुचिकरं वह्निदीपनं पाचनं परं । उदरे ये गदास्तेषां नाशनं तृप्तिकारकं । त्र्यूषणं दीपनं हन्ति श्वासकासत्वगामयान् । गुल्ममेवकफस्थौल्यमेदश्लीपदपीनसान् ।' अथवा पक्षान्तरे । मद्यं शीलयेत् । यतः-'मद्यं सर्वं भवेदुष्णं पित्तकृद्वातनाशनम् । भेदनं शीघ्रपाकं च रूक्षं कफहरं परम् । अम्लं च दीपनं रुच्यं पावनं वासकारि च । तीक्ष्णं सूक्ष्मं च विशदं व्यवायि च विकाशि च' । अथवा सतीं शोभनां हसन्तीमङ्गारधानीं शीलयेत् । यतः 'अग्निर्वायुकफस्तंभशीतकंपविनाशनः । आमाशयकरश्चापि रक्तपित्तप्रकोपनः ।' तद्वत्तथैव कम्बलरल्लकान् सेवयेत् । तत्र कम्बलो मेषादिलोमनिर्मितः, रल्लकः पार्वतीयो नेपालकम्बलः । कुतपाभिधश्छागलोमरचित इति विभेदाः । यतः कम्बलवन्तं न बाधते शीतम् । अथ तद्वत् कुथां कंथां सेवेत । यत आहुः–'भिक्षा प्राणस्य रक्षार्थं कंथा शीतनिवारिणीति' अथवा सर्वोत्कृष्टपक्षे तारुण्यमद्यालसाः तारुण्यं यौवनं तदेव मद्यं मत्ततोत्पादकं तेन तारुण्यमद्येन अलसाः क्रियामंदाः आलस्ययुक्ताः । पुनः काश्मीरागुरुलिप्तपीवरकुचाः काश्मीरं कुंकुमं, अगुरु वंशिकं, ताभ्यां लिप्तौ दिग्धौ पीवरौ

स्थूलौ कुचौ स्तनौ यासाम् । एवंभूताः कुरङ्गीदृशः कुरंग्या एण्याः दृशौ नेत्रे इव दृशौ यासां ताः नारीः दृढतरं गाढाऽलिङ्गनं यथा भवति तथा कामं यथेष्टं मुहुः पुनःपुनः आलिंगेत् उपगूहयेत् ।यतः उक्तं—' कूपोदकं वटच्छाया नारीणां सुपयोधरौ । शीतकाले भवन्त्युष्णा उष्णकाले च शीतलाः ' इति ॥ ६२ ॥

भाषार्थः—शीतज्वरवाले रोगीको जो असह्य शीत लगता हो तौ मठेमें सोंठ, मिरच, पीपलका चूर्ण मिलाकर पीवै, अथवा मद्यपान करै, अथवा निर्धूम अंगारोंसे दहकती हुई अंगीठीसे तापै, अथवा कंवल, सौड, लोई आदि ओढै अथवा जिसके कुचों-पर केसर और अगर लग रहे हों ऐसी यौवन मदमाती हरिण-नयनी स्त्रीका बार बार खूब आलिंगन करै जब तक शीतकी निवृत्ति न हो ॥ ६२ ॥

अन्यदापि शीतज्वरभेषजमाह—

शक्राह्वदद्रुघ्नवृषामृतानां निर्गुंडिकाभृंगमहौषधीनाम् ॥
क्षुद्रायवानीसहितः कषायः शीतज्वरारण्यहिरण्यरेताः ।६३।

शक्राह्वेत्यादिना ॥ शक्रादिभिर्नवभिर्द्रव्यैः रचितः कषायः शीतज्वर एव अरण्यं विपिनं तस्य हिरण्यरेताः अग्निः भवति । तत्र शक्राह्वः इंद्रयवः, दद्रुघ्नः चक्रमर्दकः, वृषो वासकः, अमृता गुडूची, निर्गुण्डिका सिंदुकः, भृङ्गो मार्कवः, महौषधं शुण्ठी, क्षुद्रा निदिग्धिका, यवानी वातारिः ॥ ६३ ॥

भाषार्थः—इन्द्रजौ, पंवाडके बीज, अडूसा, गिलोय, संभालूके पत्ते, भांगरा, सोंठ, कटेरीकी जड, अजवायन इन नौ द्रव्योंका काढ़ा शीतज्वररूप बनके जलानेको अग्निके समान है ॥ ६३ ॥

अथानेकश्लोकैः विषमज्वरस्य भेषजान्याह—

वाङ्माधुर्यजितामृतेऽमृतलता लक्ष्मीशिवाभे शिवा
विश्वं विश्ववरे घनो घनकुचे सिंही च सिंहोदरि ॥

एभिः पंचभिरौषधैर्मधुकणामिश्रः कषायः कृतः पीतश्चे द्विषमज्वरः किमु तदा तन्वङ्गि न क्षीयते ॥ ६४ ॥

वाङ्माधुर्येत्यादिना ॥ अत्र पञ्चभिः संबोधनपदैः पंचौषधानां योगः। हे वाङ्माधुर्यजितामृते वाचो वाण्याः माधुर्यं रमणीयकं तेन जितं पराभूतममृतं पीयूषं यया सा तत्सम्बोधने। अमृतलता वत्सादनी। हे लक्ष्मीशिवाभे! लक्ष्मीश्च शिवा च ते तयोः आभेव आभा शोभा यस्याः सा तत्सम्बोधने। शिवा आमलकी। पुनः हे विश्ववरे! विश्वाभ्यः सर्वाभ्यो वनिताभ्यः वरे श्रेष्ठे। विश्वं शुण्ठी। पुनः हे घनकुचे! घनौ निरन्तरौ कुचौ स्तनौ यस्याः तत्संबोधने। घनो मुस्तकः। पुनः हे सिंहोदरि! सिंहवत् उदरं यस्याः तत्संबोधने। सिंही कण्टकारी एभिरुक्तैः पञ्चभिः पञ्चसंख्याकैः औषधैः अगदैः कृतो निष्पादितः कषायः क्वाथः मधुकणामिश्रः माक्षिकसहितेन पिप्पलीचूर्णेन मिश्रः सम्पृक्तः चेत् यदि पीतः कृतपानः तदा तर्हि हे तन्वङ्गि तनूनि सूक्ष्माणि कृशान्यङ्गानि यस्यास्तत्संबोधने किमु विचारय त्वम्। यद्वा त्वं सम्भावय क्रियायां योग्यतां निश्चिनु। 'किमु संभावनायां स्याद्विचारे चापि दृश्यते' इति मेदिनीकारः। विषमज्वरः सन्ततादिभेदभिन्नो ज्वरविशेषः न क्षीयते क्षामो न भवति। अपि तु भवत्येवेति शिरश्चालनेनार्थं वदाह भावमिश्रः स्वप्रकाशे–'मुस्तामलकगुडूचीविश्वौषधकंटकारिकाक्वाथः। पीतः सकणाचूर्णः समधुर्विषमज्वरं हन्ति' इति। 'ज्वराश्च विषमाः सर्वे सन्निपातसमुद्भवाः। अथोल्बणस्य दोषस्य तेषु कार्यं चिकित्सितम्। विषमेष्वथ कर्तव्यमूर्ध्वं वाधश्च शोधनम्। स्निग्धोष्णैरन्नपानैश्च शमयेद्विषमज्वरम्'। इति ॥ ६४ ॥

भाषार्थः–हे अमृतभाषिणी! हे कान्ते! हे विश्ववरे! हे घनकुचे! हे सिंहोदरि! सोंठ, गिलोय, आंवला, नागरमोथा और बडी कटेरीकी जड इन पांचद्रव्योंके काढेमें शहत और पीपलका चूर्ण डालकर पीवै तौ क्या इसके पीनेसे विषमज्वर दूर नहीं होता है, हां अवश्य होता है ॥ ६४ ॥

सनागरायाः सपयोधरायाः ससिंहिकायाः सगुडूचिकायाः ॥ धात्र्याः कषायो मधुना विमिश्रः कणाविमिश्रो विषमज्वरघ्नः ॥ ६५ ॥

सनागराद्या इति ॥ अयं श्लोकः पूर्वश्लोकार्थस्पष्टीकरणाय ॥ ६५ ॥

भाषार्थः—सोंठ, नागरमोथा, कटेरीकी जड, गिलोय और आंवला इनके काढेमें पीपल और शहत मिलाकर पीनेसे विषमज्वर दूर हो जाता है ॥ ६५ ॥

नान्यानि मान्यानि किमौषधानि परन्तु कान्ते न रसोनकल्कात् ॥ तैलेन युक्तादपरः प्रयोगो महासमीरे विषमज्वरेऽपि ॥ ६६ ॥

नान्यानीति ॥ हे कान्ते! हे सर्वांगसुन्दरि ! 'सर्वाङ्गसुंदरी नारी कान्ता काव्येषु कथ्यते'। काम्यते स्म । कर्मणिङ्न्तात् भावे क्तः । विषमज्वरविषये अन्यानि कथ्यमानाद्भेषजादितराणि औषधानि भेषजानि । किमिति प्रश्ने । न मान्यानि न मन्तव्यानि किम् । अपि तु मान्यान्येव परन्तु किंतु महासमीरे अर्दितरोगे विषमज्वरेपि सन्ततादौ च तिलेन तिलतैलेन युक्तात् सम्पृक्तात् रसोनकल्कात् पिष्टात् लशुनात् अपरोन्यः प्रयोगः उत्कृष्टोपायो न नास्तीत्यर्थः । यथाह भावमिश्रः- 'तिलतैललवणयुक्तः कल्को लशुनस्य सेवितः प्रातः । विषमज्वरमपहरते वातव्याधीनशेषांश्च' इति ॥ ६६ ॥

भाषार्थः—हे कान्ते! महावातव्याधि और विषमज्वरमें तिलोंके तेलसे युक्त लहसनके कल्कसे उत्तम कोई और दवा नहींहै।६६।

भवति विषमहन्त्री चेतकी क्षौद्रयुक्ता भवति विषमहन्त्री पिप्पली वर्धमाना ॥ विषमरुजमजाजी हन्ति युक्ता गुडेन प्रशमयति तथोग्रां सेव्यमाना गुडेन ॥ ६७ ॥

भवती ॥ क्षौद्रेण कपिलवर्णेन मधुना युक्ता मिश्रिता चेतकी त्र्यस्रा हरीतकी विषमहन्त्री भवति विषमस्य सन्ततादिज्वरस्य नाशकर्त्री भवति । पुनश्च वर्द्धमाना पिप्पली विषमहन्त्री भवति । पिप्पल्याः वर्द्धमानत्वं यथा—'त्रिवृद्ध्या पंचवृद्ध्या वा सप्तवृद्ध्याथवा कणा । पिबेदष्टादशदिनं तथा चैवापकर्षयेत् । षट्त्रिंशद्भिर्दिनैः सिद्धं पिप्पलीवर्द्धमानकम्' इति । पुनश्च गुडेन युक्ता अजाजी जीरकः विषमज्वरं हन्ति ।

तथा तद्वत् गुडेन सह सेव्यमाना सेविता उग्रा यवानी विषमज्वरं शमयति तस्योपशान्तिं करोति. । अत्र क्रमेण योगचतुष्टयमुक्तम् ॥ ६७ ॥

भाषार्थः–शहतमें हरडका चूर्ण मिलाकर चाटनेसे विषमज्वर जाता रहता है, अथवा वर्द्धमान पीपलका सेवन विषमज्वरको नष्ट करता है, अथवा गुडमें जीरा मिलाकर सेवन करनेसे अथवा गुडके साथ अजवायन मिलाकर देनेसे विषमज्वर दूर हो जाता है ॥ ६७ ॥

स्वकान्तिजितरोचने चपललोचने मालतीप्रसूननिकरस्फुरत्कबरि पंचवक्त्रोदरि ॥ पटोलकटुरोहिणीमधुकचेतकीमुस्तकाप्रकल्पितकषायको विषममाशु जेजीयते ॥ ६८ ॥

स्वकान्तिजितेति ॥ हे स्वकान्तिजितरोचने ! स्वकीयया कान्त्या शोभया जिता पराजिता रोचना रक्तकल्हारं गोपित्तं वा यया सा तत्सम्बोधने । ' रोचना रक्तकल्हारे गोपित्तवरयोषितोः । रोचनः कूटशाल्मल्यां पुंसि स्याद्रोचके त्रिषु ' इति मेदिनीकारः । हे चपललोचने ! चपले तरले लोचने नेत्रे यस्याः सा तत्सम्बोधने । पुनः किम्भूते । हे मालतीप्रसूननिकरस्फुरत्कबरि ! मालतीप्रसूनानां सुमनाकुसुमानां निकरः प्रकारः तेन स्फुरन्ती प्रकाशमाना सकम्पना वा कबरी केशानां सन्निवेशो यस्याः सा तत्सम्बोधने । पुनः हे पञ्चवक्त्रोदरि ! पञ्चवक्त्रः सिंहः तद्वदुदरं यस्यास्तत्सम्बोधने । पटोलः तिक्तकः, कटुरोहिणी कटुका, मधुकं मधुयष्टी, चेतकी त्रिरेखाहरीतकी, मुस्तको मुस्ता, एतैः पञ्चभिः प्रकल्पितो रचितः कषायको निर्यासः आशु क्षिप्रं विषमं सन्ततादिभेदभिन्नं ज्वरविशेषं जेजीयते अतिशयेन जयति ॥ ६८ ॥

भाषार्थः–हे रक्तकमलमदापहारिणि ! हे चपललोचने ! हे मालतीके फूलोंसे अलंकृत चोटीवाली ! हे सिंहोदरि ! पलवल, कुटकी मुलहटी, हरड और नागरमोथा इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे विषमज्वर दूर हो जाता है ॥ ६८ ॥

किमु भ्रमयसि प्रिये कुवलयं कराभ्यामिदं मदी-
यवचनं सुधारससमं समाकर्णय ॥ पुराणविषमज्वरे
कुलकनिम्बसिंहीन्द्रजाऽमृताघनकषायको मधुयुतो
वरीवर्तते ॥ ६९ ॥

किमु भ्रमयसीति ॥ हे प्रिये ! प्रिया भार्या तत्सम्बोधने कराभ्यां कुरुतः इति करौ हस्तौ ताभ्यां इदं कुवलयं कमलकुमुदादिसामान्यं जलजपुष्पं कमलमिति यावत् किमु भ्रमयसि किमर्थं त्वयैतत् भ्राम्यते । अनेन ज्वरव्याकुलतां विहाय चित्तं सावधानं कुर्विति सूचितम् । तर्हि किं करोमीति चेत्तत्राह-सुधारससमं अमृतास्वादतुल्यं मदीयवचनं ममोक्तिं समाकर्णय त्वं चित्तं स्थिरीकृत्वा शृणु । किं तत् तदाह-पुराणेति । पुराणविषमज्वरे पुरातने विषमज्वरे कुलकादिषण्णां कषायः क्वाथो मधुयुतो माक्षिकसंयुक्तो वरीवर्तते अस्ति अतः किं भयं तत्र कुलकं पटोलस्य फलम्, निम्बः निम्बस्य त्वक्, सिंही कण्टकारिका, इन्द्रजमिन्द्रयवः, अमृता गुडूची घनो मेघनामा ॥ ६९ ॥

भाषार्थः–हे प्राणप्रिये ! तू अपने हाथोंसे इस कमलके फूलको क्यों भ्रमाती है, सावधान होकर अमृत रसोपम मेरी बातको सुन. पुराने विषमज्वरमें परवल, नीमकी छाल, बडी कटेरी, इन्द्रजौ, गिलोय और नागरमोथा इनके क्वाथमें शहत मिलाकर पीवै तौ विषमज्वर जाता रहता है ॥ ६९ ॥

यो भजेत्समधुश्यामां हे हेमकलशस्तनि ॥
विषमेषु व्यथास्तस्य न भवन्ति कदाचन ॥ ७० ॥

यो भजेदिति ॥ हे हेमकलशस्तनि ! हेम्नः कनकस्य कलशौ घटौ ताविव स्तनौ वक्षोजौ यस्याः । स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधादिति पक्षे ङीप् । तत्सम्बोधने । यो विषमज्वरी समधुश्यामां मधुना माक्षिकेण सह श्यामां त्रिवृतां भजेत् सेवेत् । तस्य विषमेषु सन्ततादिज्वरेषु व्यथाः दुःखानि कदाचन कस्मिन्नपि काले न भवन्ति । कदाचिदपि न भवन्तीत्यर्थः । अथवा यः पुमान् समधुश्यामां मधुना सह श्यामां पिप्पलीं भजेत् तस्य विषमेषु ज्वरेषु व्यथा कदाचन न भवन्ति । यद्वा यः

कामी समधुश्यामां मधुना मद्येन सह श्यामां षोडशवार्षिकीं भार्यां भजेत् तस्य विषमेषोः कामस्य पीडाः न भवन्तीत्यर्थः । 'मधु मद्ये पुष्परसे क्षौद्रे' इत्यमरः । श्यामा षोडशवार्षिकीति प्रसिद्धिः । अस्याः लक्षणमाह–'स्निग्धनखनयनदशना निरनुशया मानिनी स्थिरस्नेहा । सुस्पर्शशिशिरमांसलवराङ्गना सा मता श्यामा' इति ॥ ७० ॥

भाषार्थः–हे सुवर्णके कलशसमान कुचोंवाली ! जो विषमज्वरवाला शहतके साथ निसोथका सेवन करै उसे विषमज्वर छोड जाता है अथवा जो शहतके साथ पीपलका चूर्ण चाटै उसका विषमज्वर जाता रहता है, अथवा जो मद्यपान करके षोडशवार्षिकी नवयौवनाका सेवन करता है उसकी कामजन्य व्याधि दूर हो जाती है ॥ ७० ॥

क्षणमपि चलतां जहीहि मुग्धे शृणु वचनं मम तन्वि सावधाना ॥ वसति शिरसि मेघनादमूले व्रजतितरां विषमो विलासदृष्टे ॥ ७१ ॥

क्षणमपीति ! हे मुग्धे हे अङ्कुरितयौवने ! 'उदययौवना मुग्धा लज्जाविदितमन्मथा' इति लक्षणात् । हे विलासदृष्टे ! विलासो हावभावभेदो दृष्टौ दर्शने नेत्रयोर्बुद्धौ वा यस्यास्तत्सम्बोधने । 'दृष्टिस्तु स्यात् स्त्रियां बुद्धौ लोचने दर्शनेऽपि च' इति मेदिनीकारः । क्षणमपि निर्व्यापारतया स्थिरीभूय । किञ्चित्कालमपीति यावत् । चलतां चाञ्चल्यं जहीहि त्यज । हे तन्वि ! तनूनि कृशान्यङ्गानि यस्याः सा तत्सम्बोधने हे कृशाङ्गि । वोतो गुणवचनादिति ङीप् । सावधाना मनोयोगेन सह वर्तमाना भवती मम वचनं मदुक्तिं शृणु आकर्णय । किं तत् तदाह–वसतीति । मेघनादमूले मेघनादस्य तण्डुलीयशाकस्य मूलं बुध्नः तस्मिन् शिरसि उत्तमाङ्गे वसति बद्धे सति विषमो विषमज्वरः व्रजतितराम् । अतिशयेन गच्छतीत्यर्थः ॥ ७१ ॥

भाषार्थः–हे अज्ञातयौवने ! थोडी देरके लिये अपनी चंचलताको छोड, और हे कृशाङ्गि ! मन लगाकर मेरी बात सुन. हे विलास दृष्टे ! चौलाईकी जडको शिर पर बांधनेसे विषमज्वर जाता रहता है ॥ ७१ ॥

विषममपि हरत्यसौ कषायो मधुमधुरो मदिरामृता-शिवानाम् ॥ अहमिव सततं तव प्रकोपं चरणस-रोरुहयोर्लुठन्हठेन ॥ ७२ ॥

विषममपीति ॥ हे तन्वि ! पुनश्च मम वचनं शृण्विति सम्बन्धः । किं तत् तदाह–मधुमधुरः मधुना माक्षिकेण मधुरो मधुरसयुक्तो मदिरामृताशिवानां त्रयाणामसौ कषायो निर्यूहः विषमं विषमज्वरं हरत्यपि हन्ति किं ? हन्त्येव । 'अपिः सम्भावनाप्रश्नशङ्कागर्हासमुच्चये । तथा युक्तपदार्थेऽपि कामकारक्रियासु च' इति मेदिनीकारः । अत्र दृष्टान्तः कः कमिव तव प्रकोपं त्वदीयं प्रकृष्टं क्रोधमहमिव यथाहं हरामि तथा । किं कुर्वन् तव चरणसरोरुहयोस्तव पादपद्मयोः सततमश्रान्तं हठेन बलात्कारेण लुठन् अश्व इवेतस्ततः पतन् । अनेन गुरुमानो दर्शितः । स च अपरस्त्रीसम्भोगदर्शनादिजन्मा चरणपातभूषणदानाद्यपनेयो गुरुरित्युक्तः । तत्र मदिरा ताम्रपुष्पा धातकी, अमृता गुडूची, शिवा आमलकी ॥ ७२ ॥

भावार्थः–धायके फूल, गिलोय और आंवला इनके क्राथमें शहत मिलाकर पीना विषमज्वरको ऐसे दूर कर देता है जैसे मैं तेरे चरणकमलोंपर हठपूर्वक बार बार लोटकर तेरे प्रकोपको शान्त करता हूं ॥ ७२ ॥

अबले कमलातनुरक्तकले चलदृक्कमले धृतकामकले ॥ अमृताब्दशिवं मधुमद्विषमे विषमे विषमेषुविलासरते ॥ ७३ ॥

अबले इति । अबले अल्पं बलं यस्याः सा तत्सम्बोधने । अल्पार्थेऽत्रनञ् । हे कमलातनुरक्तकले कमला श्रीः तस्यास्तनुः शरीरं तद्वत् रक्ता लोहिता कला अंशमात्रं यस्याः सा तत्सम्बोधने । पुनः किम्भूते चलदृक्कमले दृशौ कमले इव चलती चञ्चले दृक्कमले यस्याः सा तत्सम्बोधने । पुनः धृतकामकले धृतो गृहीतः कामेन अनुरागेण भोगेच्छया वा कलो मधुरध्वनिर्यया सा तत्सम्बोधने । पुनः हे विषमे हे असमाने ! विगता समा सदृशी यस्याः तत्सम्बोधने पुनश्च विषमेषुविलासरते ! विषमाः पञ्च इषवः शराः यस्य तस्य कामस्य यो विलासो लीला तत्र रतिरनुरागो यस्याः सा तत्सम्बोधने । विषमे विषमज्वरं निमित्तं कृत्वा अमृतादीनां त्रयाणां क्राथः कर्तव्यः । निमित्तात् कर्मयोगे इति सप्तमी । अत्र क्राथस्य निमित्तं विषम

तस्यामृतादिकर्मणा सह संयोगात् । तत्रामृता गुडूची, अब्दो मेघनामा, शिवा आमलकी, एषां द्वन्द्वैक्यं । तच्च माक्षिकसहितं एषां कषायं पिबतो विषमो नश्यतीत्यर्थः ॥ ७३ ॥

भाषार्थः–हे अबले ! हे लक्ष्मीवत् रक्तवर्णे ! हे चलितकमलनेत्रे ! हे कामकलाधारिणी ! हे विषमे! हे कामक्रीडाविलासिनि ! विषमज्वरमें गिलोय, नागरमोथा और आंवला इनके काथमें शहत डालकर पीना हित है ॥ ७३ ॥

अथ ज्वरहरं धूपनमाह–

अयि कुशाग्रसमानमते मते मतिमतामतिमन्मथमन्थरे ॥ ज्वरहरं रुगरिष्टशिवावचायवहविर्जतुसर्षपधूपनम् ॥ ७४ ॥

अयीति ॥ अयीत्यनुरागपूर्वकं सम्बोधनं । हे कुशाग्रसमानमते दर्भाग्रतुल्या तीक्ष्णा मतिर्बुद्धिर्यस्यास्तत्सम्बोधने । हे मतिमतां मते पंडितानां मध्ये माननीये । पुनः हे अतिमन्मथमन्थरे । अतिमन्मथोऽत्यर्थः कामः तेन मन्थरे मन्दगामिनि । रुगाद्यष्टानां धूपनं धूपः ज्वरहरं भवति । तत्र रुक् कुष्ठं, अरिष्टो निंबः, शिवा धात्री, वचा गोलोमी, यवः इन्द्रयवः, हविर्घृतं, जतु लाक्षा, सर्षपः गौरसर्षपः ॥ ७४ ॥

भाषार्थः–हे तीव्रबुद्धे! हे माननीये ! हे मन्दगामिनि ! कूठ, नीमकी छाल, आंवला, बच, इन्द्रजौ, घी, लाख और सरसों इन आठ औषधियोंकी धूप देना ज्वर रोगीको हित है ॥ ७४ ॥

अथैकस्मिन्दिने द्विवारमागच्छतो ज्वरस्य भैषज्यमाह–

तिक्तोशीरबलाधान्यपर्पटाम्भोधरैः कृतः ॥ काथः पुनः समायान्तं ज्वरं शीघ्रं विनाशयेत् ॥ ७५ ॥

तिक्तेत्यादिना ॥ तिक्तादिषड्भिर्द्रव्यैः कृतो निष्पादितः काथः कषायः पुनः समायान्तमेकस्मिन्नहनि एकवारमागत्य पुनर्द्वितीयवारं तस्मिन्नेव दिने आगच्छन्तं ज्वरं शीघ्रं त्वरितं विनाशयेत् अदर्शनं कारयेत् । तत्र तिक्ता कटुका, उशीरं वीरणमूलं, बला वाट्यालका, धान्यं धान्याकं, पर्पटः पित्तारिः, अम्भोधरो मुस्ता ॥ ७५ ॥

भाषार्थः—कुटकी, खस, खरहटी, धनियां, पितपापडा, और नागरमोथा इनका क्वाथ बार बार आते हुए ज्वरको नष्ट करता है ॥ ७५ ॥

अथ विषमज्वरक्षयादिरोगाणां प्रत्याख्यानाय घृतविशेषमाह—

गोपीद्व्यामलकीस्थिरामगधजातिक्तापयःपालिनीद्राक्षाश्रीफलधावनीहिमविषामुस्तेन्द्रजैः साधितम् ॥
स्यादाज्यं विषमज्वरक्षयशिरःपार्श्वव्यथारोचकच्छर्दिःशोफहलीमकप्रशमनं लीलालतामञ्जरि ॥ ७६ ॥

गोपीत्यादिना ॥ हे लीलालतामञ्जरि लीलैव शृंगारादिचेष्टैव लता वल्ली तस्याः मञ्जरी वल्लरी तत्सम्बोधने । गोप्यादिभिरोषधीभिः साधितं निष्पादितमाज्यं घृतं पानान्नस्याद्वा विषमज्वरादीनां रोगाणां प्रशमनं मारणं भवति तत्र गोपी शारिवा, द्व्यामलकी भूम्यामलकी तिष्यफला, स्थिरा शालपर्णी, मगधजा पिप्पली, तिक्ता कटुका, पयो ह्रीबेरं, पालिनी त्रायमाणा, द्राक्षा मृद्वीका, श्रीफलः शाण्डिल्यः, धावनी बृहती, हिमं चन्दनं, विषा अतिविषा, मुस्ता मुस्तकं, इन्द्रजः इन्द्रयवः । विषमज्वरोऽनियतकालजा जूर्तिः क्षयः कासरोगविशेषो यक्ष्मा शिरःपार्श्वव्यथा सूर्यावर्तार्धभेदाभ्यां मस्तकैकभागे पीडा अरोचकोऽरुचिरोगः छर्दिर्वमनरोगः शोफः शोथरोगः हलीमकः पाण्डुरोगप्रभेदः । अस्य स्वरूपं तु—'यदा तु पाण्डोर्वर्णः स्याद्धरितः श्यावपीतकः । बलोत्साहः क्षयस्तन्द्रा मन्दाग्नित्वं मृदुज्वरः । स्त्रीष्वहर्षोऽङ्गमर्दश्च श्वासतृष्णारुचिभ्रमाः । हलीमकं तदा तस्य विद्यादनिलपित्ततः' इति ॥७६॥

भाषार्थः—हे लीलालतामंजरि! शारिवा, भूआंवला, शालिपर्णी, पीपल, कुटकी, सुगंधवाला, त्रायमाण, दाख, बेल, कटेरी, चन्दन, अतीस, नागरमोथा और इन्द्रजौ इनके क्वाथमें सिद्ध किया हुआ घृत (नस्य वा पानद्वारा) विषमज्वर, क्षयीरोग, सिर दर्द, पसलीका दर्द, अरुचि, वमन, सूजन और हलीमक (पांडुरोग) इनको दूर करता है ॥ ७६ ॥

अथ कर्मज्वरोपायानाह—

चलदलतरुसेवा होममन्त्रौ त्रिनेत्रद्विजसुरगुरुपूजा कृष्णनाम्नां सहस्रम् ॥ मणिधृतिपरिदानान्याशिषस्तापसानां सकलमिदमरिष्टं स्पष्टमष्टज्वराणाम् ॥७७॥

चलदलतरुसेवेत्यादिना ॥ इदं चलदलतरुसेवादिकं सकलं सम्पूर्णं यथाविधि श्रद्धयानुष्ठितम् अष्टज्वराणां वातिकादीनामरिष्टं अरिवत्तिष्ठतीत्यरिष्टं नाशनं भवतीति शेषः । अष्टज्वराः । यथा—'दक्षापमानसङ्क्रुद्धरुद्रनिःश्वाससम्भवः । ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वन्द्वसङ्घातागन्तुजः स्मृतः' इति । तथाहि । 'वातिकः पैत्तिकश्चैव कफजो वातपित्तजः । वातश्लेष्मप्रभूतश्च पित्तश्लेष्मोद्भवस्तथा । सङ्घातागन्तुजावेवं ज्वरोऽष्टविध उच्यते' । स्पष्टं ग्रंथान्तरे स्फुटं । किं तादित्यपेक्षायामाह चलदलेति । तत्र चलदलतरुः पिप्पलवृक्षः तस्य सेवाविधिः निर्दिष्टवर्त्मना पूजा । होमः प्रतिकूल-ग्रहमन्त्रेण तमेव ग्रहमुद्दिश्य विधिवत्स्थापितेऽग्नौ ग्रहप्रीत्युत्पादकस्य हावषः प्रक्षेपः । मन्त्रः प्रतिकूलग्रहमंत्रस्य सिद्धमन्त्रस्य वा जपः । त्रिनेत्रः सदाशिवः तस्य पूजा सहस्र-कलशाभिषेकरूपा । द्विजानां ब्राह्मणानां भोजनाच्छादनाद्यर्पणेन प्रीत्युत्पादनरूपा पूजा । सुराणां वास्तुग्रहयागादिषु पूजा । गुरोः परमार्थपददानकर्तुर्ब्राह्मणस्य च पूजा । 'गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः । सर्वेषामेव वर्णानां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः' इत्यादि स्मृतेः कृष्णनाम्नां सहस्रं विष्णोर्नामसहस्रस्य वा पाठः । 'भवत्यरोगो द्युतिमान् बलरूपगुणान्वितः । रोगार्तो मुच्यते रोगात्' इतिफलश्रुतेः । मणिधृतिः मणीनां मा-णिक्यादिरत्नानां ग्रहदोषशान्त्यर्थं विप्राज्ञया विधारणम् । ग्रहमणयो यथा । 'माणि-क्यमुक्ताफलविद्रुमाणि गारुत्मकं पुष्पकवज्रनीलं । गोमेदवैडूर्यकमर्कतः स्यू रत्नानि' इति । परिदानानि घृतकुम्भादीनि ज्वरोक्तानि दानानि । तापसानां तपस्विनामाशी-र्वादा मंगलप्रार्थनाः यदुक्तं ग्रंथान्तरे स्पष्टमिति तदाह भावमिश्रः—'सोमं सानुचरं देवं समातृगणमीश्वरं । पूजयन् प्रयतः शीघ्रं मुच्यते विषमज्वरात्' । सोममुमासहितं । सा-नुचरं नन्द्यादिगणसहितं । प्रयतः पवित्रः । 'विष्णुं सहस्रमूर्धानं चराचरपतिं विभुं । स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान् सर्वान् व्यपोहति' । सहस्रमूर्धानमिति सहस्रशीर्षेत्यादि वेदाभिहितनामसहस्रेण भारतोक्तेन । ज्वरस्यापि देवतात्वात् पूजा कार्या । यत आह विदेहः—तीर्थायतनदेवाग्निगुरुवृद्धोपसर्पणैः । श्रद्धया पूजनैश्चापि सहसा शाम्यति ज्वरः' । तीर्थमृषिजुष्टं जलं आयतनं देवाधिष्ठितं जालन्धरपीठपुरुषोत्तमक्षेत्रश्रीशैला-दीनि । 'दानैर्दयाभिरपि च द्विजदेवतागोगुर्वर्चनप्रणतिभिश्च जपैस्तपोभिः । इत्युक्तपु-ण्यनिचयैरपचीयमानाः प्राक्पापजा यदि रुजः प्रशमं प्रयान्ति' इति भेषजाचार्यश्च॥७७॥

भाषार्थः—पीपलके वृक्षकी पूजा, होम, मंत्रजाप, शिव, ब्राह्मण, देवता और गुरु इनका पूजन, विष्णुसहस्रनामका पाठ, ग्रहके अनुकूल मणि धारण करना, घृत कुंभादिकोंका दान, तपस्वियों-का आशीर्वाद, इन सब उपायोंके करनेसे आठ प्रकारके ज्वर शान्त हो जाते हैं ॥ ७७ ॥

अथ लोलिम्बराजः स्वकान्तां सम्बोधयन् ज्वरयुक्तज्वरमुक्तयोर्हितमुपदिशति—

अयि रत्नकले कलानिधे कुशले कोकिलकोमलस्वरे ॥
ज्वरवाञ्ज्वरवर्जितोऽथवा लघु कुर्यादशनं दिनात्यये ॥ ७८ ॥

इति श्रीलोलिम्बराजकृतौ ज्वरप्रतीकारोनाम प्रथमो विलासः॥ १॥

अयीति ॥ अयीति कोमलालापे । हे रत्नकले रत्नानि स्त्रीजातिश्रेष्ठानि कलाः अंशास्तत्सम्बोधने हे कलानिधे कलाश्चतुःषष्टिसङ्ख्याकाः निधीयन्ते यत्र । डुधाञः कमर्ण्यधिकरणे चेत्यधिकरणे किः तत्सम्बोधने । यद्वा कला चन्द्रकला निधीयतेऽत्र तेन हे शशिवदने हे कुशले हे विज्ञे हे कोकिलकोमलस्वरे कोकिलस्य पिकस्येव कोमलो मृदुलः स्वरो यस्यास्तत्सम्बोधने । ज्वरवान् ज्वरो विद्यते यस्य सः ज्वरवर्जितो ज्वरमुक्तो वा दिनात्यये वासरावसाने अशनं भोजनं लघु अगुरु कुर्यात् । ज्वरमुक्तस्य लक्षणमाह माधवः—'स्वेदो लघुत्वं शिरसः कंडू पाको मुखस्य च । क्षवथुश्चान्नलिप्सा च ज्वरमुक्तस्य लक्षणम्' इति ॥ ७८ ॥

इति श्रीकुलावधूतश्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्धरिहरानन्दनाथभारतीशिष्य ब्रह्मावधूतश्रीसुखानन्दनाथविरचितायां सुखानन्द्यां लोलिम्बदीपिकायां ज्वरप्रतीकारनाम्नः प्रथमविलासस्य प्रकाशार्थः ॥ १ ॥

भाषार्थः-हे रत्नकले! हे कलानिधे! हे कुशले! हे कोकिलके समान कोमल स्वरवाली! जिसको ज्वर आता हो, वा जिसको ज्वर न आता हो वह सायंकालके समय हलका भोजन करै॥७८॥

इति प्रथमविलासभाषाव्याख्या समाप्ता ॥ १ ॥

अथ द्वितीयो विलासः ।

अथ क्रमप्राप्तस्य ज्वरातिसारस्य रुक्प्रतीकारमाह—

अमृतातिविषासुरराजयवस्तनयित्नुकिरातकविश्वपयः ॥
अतिसारहरं ज्वरनाशकरं शृणु निर्जितकुञ्जरकुम्भकुचे॥१॥

अमृतेति ॥ हे निर्जितकुञ्जरकुम्भकुचे निर्जितौ पराजितौ कुञ्जरस्य गजस्य कुम्भौ हस्तिशिरस्थौ मांसपिण्डौ कुचाभ्यां स्तनाभ्यां यया सा तत्सम्बुद्धौ । अमृ-

तादिषण्णां पयः क्वाथः तं शृणु आकर्णय । कीदृशं अतिसारहरं हरतीति हरं अतिसारस्यान्नगन्धैर्हरं पुनः ज्वरनाशकरं ज्वरस्य विनाशकरं ज्वरातिसारस्य नाशनं तत्र अमृता गुडूची, अतिविषा शुक्लकन्दा, सुरराजयवो वत्सकः, इन्द्रयवो वा, स्तनयित्नुर्मुस्तकः, किरातको भूनिम्बः, विश्वं शुण्ठी, यथाह चक्रपाणिदत्तः–' नागरातिविषामुस्तभूनिम्बामृतवत्सकैः । सर्वज्वरहरः क्वाथः सर्वातिसारनाशनः ' । इति ॥ १ ॥

भाषार्थः–हे निर्जितकुंजरकुंभकुचे! गिलोय, अतीस, इन्द्रजौ, नागरमोथा, चिरायता, सोंठ, इनका क्वाथ अतिसारको दूर करता है और ज्वरको नष्ट करता है ॥ १ ॥

क्वाथान्तरमाह–

शीतोशीरकयुग्मवत्सकवृकीपद्माह्वधान्यामृताभूनिम्बाम्बुदबालबिल्वकविषाविश्वौषधैः साधितः ॥ क्वाथो माक्षिकसाक्षिको विजयते हृल्लासतृष्णावमीदाहारोचकसङ्गभङ्गचतुरः सर्वातिसारामयान् ॥ २ ॥

शीतेत्यादिना ॥ शीतादिचतुर्दशभिरोषधीभिः साधितः माक्षिकसाक्षिकः मधुप्रक्षेपयुक्तः क्वाथः कषायः सर्वातिसारामयान् अखिलानुदरामयान् विजयते जयति । कथम्भूतः क्वाथः हृल्लासतृष्णावमीदाहारोचकसङ्गभङ्गचतुरः हृल्लासः हिक्कारोगः तृष्णा पिपासा, वमी वान्तिः, दाहः सन्तापः, अरोचकोऽरुचिरोगः, एषु सङ्गः अहं हृल्लासी तृष्णावानित्याद्यभिनिवेशस्तस्य भङ्गे भञ्जने चतुरो निपुणः क्वाथः । तत्र शीतं रक्तचन्दनं । कषाये रक्तचन्दनस्योक्तत्वात् । 'कषायलेपयोर्ग्राह्यं चन्दनं रक्तचन्दनम्' इति वचनात् । उशीरकयुग्मं उशीरं वीरणमूलमेकं, अपरं लामज्जकं तच्च उशीरवत् पीतच्छवि तृणं भवतीति भेदः, वत्सकः कुटजः, वृकी पाठा, पद्माह्वं कमलं, धान्यं धन्याकं, अमृता गुडूचि, भूनिम्बश्चिरतिक्तः, अम्बुदो मुस्ता, बालं ह्रीवेरं, बिल्वकः बिल्वपेशी, अथवा बालबिल्वं आमबिल्वम् , विषा अतिविषा, विश्वौषधं शुण्ठी ॥ २॥

भाषार्थः–लालचन्दन, दोनों खस, कुडाकी छाल, पाठा, पद्माख, धनियां, गिलोय, चिरायता, नागरमोथा, सुंगधवाला, बेलगिरी, अतीस और सोंठ इन चौदह औषधियोंके क्वाथमें शहत डालकर पीनेसे हिचकी, प्यास, वमन, दाह, अरुचि और सब प्रकारके अतिसारोंको दूर करता है ॥ २ ॥

अथातिसारे पञ्चमूल्यादिकाथमाह—

पञ्चाङ्घ्रिवृक्यब्दबलेन्द्रबीजत्वक्सेव्यतिक्तामृतविश्वबिल्वैः ॥ ज्वरातिसारान्सवमीन्सकासान्सश्वासशूलाञ्शमयेत्कषायः ॥ ३ ॥

पञ्चाङ्घ्रीति ॥ पञ्चाङ्घ्र्यादिभिः पञ्चदशभिः कृतो यः कषायः सः सवमीन् सकासान् सश्वासशूलान् एतादृशान् ज्वरातिसारान् शमयेदित्यन्वयः । तत्र पञ्चाङ्घ्रिः शालपर्ण्यादिपञ्चमूलं प्रागुक्तं, वृकी पाठा, अब्दो मुस्ता, बला वाट्यालका, इन्द्रबीजत्वक् बीजं च त्वक् च अनयोः समाहारः इन्द्रस्य बीजत्वक् इन्द्रस्य कुटजस्य बीजं फलमिन्द्रयवं तस्यैव त्वक् कुटजवल्कलं, सेव्यमुशीरं, तिक्ता कटुकी, अमृता छिन्नरुहा, विश्वं नागरं, बिल्वं बिल्वपेशिका, आमं बिल्वमित्यर्थः । 'यतः फलेषु पक्केषु यो गुणः समुदाहृतः । बिल्वादन्यत्र स ज्ञेयो बिल्वमामं गुणोत्तरम्' इत्युक्तम् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—लघुपंचमूल (शालपर्णी, पृश्निपर्णी, दोनों कटेरी, गोखरू) पाठा, नागरमोथा, खरैटी, इन्द्रजौ, कुडाकी छाल, खस, कुटकी, गिलोय, सोंठ और बेलगिरी इन पन्द्रह औषधियोंका काथ पीनेसे वमन, श्वास और शूलसे युक्त ज्वरातिसारको दूर करता है ॥ ३ ॥

हे लोलिम्बराज ! पञ्चमूलद्वये तिष्ठति सत्यस्मिन् किं गुरुपञ्चमूलं प्रक्षेप्तव्यं लघु वेति प्रियया पृष्टे तत्राह—

कफाधिके वा पवनाधिके वा द्वयाधिके वा गुरुपञ्चमूलम् ॥ पित्ताधिके वा लघुपञ्चमूलं पुनः पुनः पृच्छसि किं मृगाक्षि ॥ ४ ॥

कफाधिक इति ॥ हे मृगाक्षि ! कफाधिके ज्वरातिसारे अथवा पवनाधिके वाय्वधिके वा द्वयाधिके वातकफाधिके गुरुपञ्चमूलं प्रक्षेप्तव्यं । यथाह चक्रपाणिदत्तः— 'बिल्वस्योनाकगम्भारीपाटलागणिकारिकाः । कफवातहरं श्रेष्ठं पञ्चमूलमिदं महत्' इति । पित्ताधिक्ये लघुपञ्चमूलं प्रक्षेप्तव्यमिति । तदाह चक्रपाणिदत्तः—'शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरं । वातपित्तहरं वृष्यं कनीयः पञ्चमूलकम्' इति ॥ ४ ॥

भाषार्थः—हे हरिणनयने ! बार बार क्या पूछती है ? कफकी अधिकतामें, अथवा वातकी अधिकतामें, अथवा कफ वात दोनों

की अधिकतामें बृहत्पंचमूल देना चाहिये और पित्तकी अधिकतामें लघुपंचमूल देना चाहिये ॥ ४ ॥

अथ शोकातिसारस्य चिकित्सामाह—

सदेवदारुः सविषः सपाठः सजन्तुशत्रुः सघनः सतीक्ष्णः ॥ सवत्सकः क्काथ उदाहृतोऽसौ शोकातिसाराम्बुधिकुम्भजन्मा ॥ ५ ॥

सदेवदारुरिति ॥ हे मृगाक्षि ! असौ क्काथः शोकातिसाराम्बुधिकुम्भजन्मा उदाहृतः । शोकेन अतिसारः स एवाम्बुधिः तस्य कुम्भजन्मा अगस्त्यः । कोऽसौ तमाह—सदेवदारुरिति । देवदारुणा पूतिकाष्ठेन सहितः । सविषः विषया प्रतिविषया सहितः । सपाठः पाठया अम्बष्ठया सह सजन्तुशत्रुः सह जन्तुशत्रूणा विडङ्गेन सघनः सह घनेन मुस्तेन । सतीक्ष्णः सह तीक्ष्णेन मरीचेन । सवत्सकः सह वत्सकेन कुटजेन । सर्वत्र सहस्य सः संज्ञायामिति सादेशः । 'भयशोकसमुद्भूतौ ज्ञेयौ वातातिसारवत् । तयोर्वातहरी कार्या हर्षणाश्वासनैः क्रिया' । हर्षणाश्वासनपूर्विका वातहरी क्रिया कार्येत्यर्थः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—देवदारु, अतीस, पाठा, वायविडंग, नागरमोथा, कालीमिरच और कुड़ाकी छाल इनका क्काथ शोकातिसारको तत्काल दूर कर देता है ॥ ५ ॥

अथातिसारे पाचनान्याह—

अयि प्रिये प्रीतिभृतां मुरारौ किं बालकश्रीधनधान्यविश्वैः ॥ यस्याप्यतीसाररुजो न तस्य किं बालकश्रीघनधान्यविश्वैः ॥ ६ ॥

अयीत्यादि ॥ अयि प्रिये इति संबोधनम् । मुरारौ कृष्णे प्रीतिभृतां हर्षमुद्वहतां पुरुषाणां बालकश्रीधनधान्यविश्वैः किम्, न किमपि प्रयोजनं । तत्र बालकः पुत्रः, श्रीः लक्ष्मीः, धनधान्यं धान्यसमूहः, विश्वं प्रपञ्चजालं । यस्य मनुजस्य अतिसाररुजः अतिसारभवा रुजो रोगा न सन्ति तस्यापि बालकश्रीधनधान्यविश्वैः किम्, न किमपि फलं । अत्र बालकं ह्रीबेरं, श्रीर्बिल्वं, घनो मुस्ता, धान्यं धन्याकं, विश्वं शुण्ठी । यथाह चक्रपाणिदत्तः—'धान्यकं नागरं मुस्तं बालकं बिल्वमेव च । आमशूलविबंधघ्नं पाचनं वह्निदीपनम्' इति ॥ ६ ॥

भाषार्थः-हे प्रिये! विष्णु भगवानमें जिनकी प्रीति है उनको पुत्र, लक्ष्मी, धन और धान्यसे क्या प्रयोजन है? और जिनके अतिसार रोग नहीं है उनको नेत्रबाला, बेलगिरी, नागरमोथा, धनियां और सोंठ इनका क्वाथ निष्प्रयोजन है. इस लिखनेका प्रयोजन यह है कि जिनके अतिसार हो उनको इन पांच द्रव्यों-का क्वाथ पीना उचित है ॥ ६ ॥

पित्तातिसारो धान्याम्बुबिल्वाब्दानां निरुध्यते ॥
केनात्र ज्ञायते कर्ता पण्डितेन त्वया विना ॥ ७ ॥

पित्तातिसार इति ॥ धान्याम्बुबिल्वाब्दानां केन जलेन पित्तातिसारः पैत्तिकमतिसरणं निरुध्यते नश्यति । अत्रास्मिन् पद्ये त्वया पण्डितेन विदुषा विना केन कर्ता ज्ञायते त्वयैव ज्ञायते नतु मूर्खेणेत्यर्थः । ग्रंथकारस्य तु रीतिरियमस्ति । पित्तातिसारः धान्याम्बुबिल्वाब्दानां केन जलेन विना केनान्येन औषधिजालेन निरुध्यते न केनापीत्यर्थः । कथं तत्र दृष्टान्तः-यथा पण्डितेन त्वया विना अत्रास्मिन् केन कर्ता ज्ञायते न केनापि तथेत्यर्थः । इयमेव ग्रन्थकारस्य लापनरीतिरस्माकं सम्मता । तत्र धान्यं धन्याकं, अंबु ह्रीबेरं, बिल्वमामबिल्वं, अब्दो मुस्तकः । यथाह-'इदं धान्यचतुष्कं स्यात् पैत्ते शुण्ठीं विना पुनः' इति ॥ ७ ॥

भाषार्थः-धनियां, नेत्रवाला, बेलगिरी और नागरमोथा इन चार द्रव्योंका क्वाथ पीनेसे पित्तातिसार नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

इन्द्रजमेघमदाकुसुमश्रीलोध्रमहौषधमोचरसानाम् ॥
चूर्णमिदं गुडतक्रसमेतं हन्त्यचिरादतिसारमुदारम् ॥८॥

इन्द्रजेति ॥ इदमिन्द्रजादीनां द्रव्याणां चूर्णं सम्पेषणजनितं रजः गुडतक्र-समेतं इक्षुपाककालशेयाभ्यां संयुक्तं उदारमतिसारं महान्तमतिसरणं अचिराच्छीघ्रं हन्ति नाशयति । तत्रेन्द्रजं भद्रयवं, मेघो मुस्तकः, मदाकुसुमं धातकीपुष्पं, श्रीबिल्व-मामं, लोध्रो गालवः, महौषधं शुण्ठी, मोचरसः शाल्मलीवेष्टः । अत्राह लटकनसूनुः-'मुस्ता वत्सकबीजं मोचरसो बिल्वधातकीलोध्रं । गुडमथितसंप्रयुक्तं गंगामपि वेग-वाहिनीं रुन्ध्यात्' इति ॥ ८ ॥

भाषार्थः-इन्द्रजौ, नागरमोथा, धायके फूल, बेलगिरी, लोध्र, सोंठ और मोचरस इनके चूर्णको गुड और तक्रमें मिलाकर पीनेसे तीव्र अतिसार शीघ्र जाता रहता है ॥ ८ ॥

कल्याणि काञ्चनलताललिताङ्गयष्टे ताम्बूलशालिवदने ललने शृणुष्व ॥ शुण्ठीमदाकुसुममोचरसाजमोदास्तक्रान्विताः प्रशमयन्त्यतिसारमुग्रम् ॥ ९ ॥

कल्याणीति ॥ हे कल्याणि हे भद्रे ! हे काञ्चनलताललिताङ्गयष्टे काञ्चनलतेव हेम्नः शाखिशाखावत् ललिता मनोहरा अङ्गयष्टिर्देहयष्टिकाशरीरलता वा यस्यास्तत्सम्बोधने । पुनः हे ताम्बूलशालिवदने ताम्बूलेन पर्णेन शालते शोभते इति ताम्बूलशालि एतादृशं वदनमाननं यस्यास्तत्सम्बोधने । पुनः हे ललने अङ्गनोत्तमे ! शृणुष्व आकर्णय । मद्वचनमिति शेषः । किं तत् तदाह । शुण्ठीति । तक्रान्विताः दण्डाहतसंयुक्ताः शुण्ठ्यादयः उग्रमुत्कटमतिसारमतिसरणं प्रशमयन्ति नाशयन्तीत्यर्थः तत्र शुण्ठी विश्वम्, मदाकुसुमं धातकीकुसुमं, मोचरसः शाल्मलीवेष्टः, अजमोदा उग्रगन्धा ॥ ९ ॥

भाषार्थः–हे कल्याणी ! हे स्वर्णलतासी देहवाली ! हे तांबूलचर्वणसे सुशोभित मुखवाली ललने ! सुन, सोंठ, धायके फूल, मोचरस, अजमोद, इन चारोंके चूर्णको तक्रके साथ पीनेसे उग्र अतिसार रोग जाता रहता है ॥ ९ ॥

अतिसारप्रशमनी चित्रपत्रकशोभिता ॥
वृद्धिदाऽतनुवह्नेश्च श्यामा श्यामेव राजते ॥ १० ॥

अतिसारेति ॥ हे कल्याणि ! श्यामा गोपी विराजते अतिशयेन शोभते । कथम्भूता । चित्रपत्रकशोभिता चित्राणि अद्भुतानि यानि पत्रकाणि पलाशानि तैः शोभिता कान्तियुक्ता । पुनः अतनुवह्नेरनंगाग्नेर्वृद्धिदा स्फूर्तिप्रदा । पुनः कीदृशी अतिसारप्रशमनी अतिसरणस्य वधकर्त्री । यथोक्तं निघण्टौ–'शारिवायुगलं स्वादु स्निग्धं शुक्रकरं गुरु । अग्निमान्द्यारुचिश्वासकासामविषनाशनं । दोषत्रयास्रप्रदरज्वरातीसारनाशनम्' इति । यद्वा श्यामा प्रियङ्गुः साच चित्रपत्रकशोभिता जलपिप्पलीसमेता अतिसारप्रशमनी भवति । तत्र दृष्टान्तः केव श्यामेव षोडशवार्षिकी स्त्रीव । कथंभूता श्यामा चित्रपत्रकशोभिता चित्रमद्भुतं यत् पत्रकं पत्रभङ्गः स्तनकपोलादिषु कस्तूरिकादिभी रचिता पत्रावलि तेन शोभिता अलङ्कृता । पुनः कीदृशी श्यामा अतिसारप्रशमनी अतिसारोऽतिबलस्तस्य प्रशमनकर्त्री सङ्गमाद्बलहानिकर्त्रीत्यर्थः । उक्तं च–'सद्यो बलहरा नारी सद्यो बलकरं पयः । स्त्रियं गच्छेत्पयः पीत्वा तां च त्यक्त्वा पुनः पिबेत्' इति । 'सारो बले स्थिरांशे च' इत्यमरः । कथंभूता श्यामा अतनुवह्नेर्वृद्धिदा । यथोक्तं–'श्यामा

गुणवती कान्ता प्रिया मधुरभाषिणी । रतेषु धृष्टा या नारी सा स्त्री वृष्यतमा स्मृता' इति ॥ १० ॥

भाषार्थः–(अतिसारप्रशमनी) शारीरिक बलको क्षीण करनेवाली, (चित्रपत्रकशोभिता) विचित्र पत्र रचनासे आभूषित, (अतनुवन्हेः वृद्धिदा) कामाग्निको बढानेवाली जैसे षोडशवार्षिकी युवती शोभायमान होती है वैसेही (अतिसारप्रशमनी) अतिसारको दूर करनेवाली (चित्रपत्रकशोभिता) अद्भुत पत्तोंसे सुशोभित (अतनुवन्हेर्वृद्धिदा) जठराग्निको बढानेवाली (श्यामा) सारिवा होती है ॥ १० ॥

बाले बालताप्रवालललिताकराङ्घ्रिहस्ताधरे मल्ली-
माल्यलसत्कुचक्षितिधरे रत्नज्वलन्मेखले ॥ चञ्च-
त्कुण्डलमण्डले विजयते रक्तामशूलान्वितातीसारं
कुटजाब्दबिल्वकविषोदीच्यैः कषायः कृतः ॥ ११ ॥

बाले इति ॥ हे बाले हे श्यामे! हे बाललताप्रवालललिताकाराङ्घ्रिहस्ताधरे बाला कोमला या लता वल्ली शाखिशाखा वा तस्या ये प्रवालाः नवीनपत्राणि तद्वत् ललिताकारौ रुचिराकृती अङ्घ्री चरणौ हस्तौ पाणी अधरौ ओष्ठौ च यस्याः तत्सम्बोधने । पुनः मल्लीमाल्यलसत्कुचक्षितिधरे मल्ली मल्लिका तस्याः माल्यं पुष्पस्रक् । मालैव माल्यम् चातुर्वर्ण्यादित्वात् स्वार्थे ष्यञ् । तेन लसन्तौ प्रकाशमानौ कुचावेव क्षितिधरौ भूधरौ यस्यास्तत्सम्बोधने । पुनः हे रत्नज्वलन्मेखले रत्नैर्माणिक्यमुक्तामरकतादिभिः ज्वलन्ती देदीप्यमाना मेखला काञ्ची यस्यास्तत्सम्बोधने । पुनः हे चञ्चत्कुण्डलमण्डले चञ्चती जाज्वल्यमाने कुण्डलयोः कर्णवेष्टनयोर्मण्डले चक्रवाले कपोलस्वरूपे यस्यास्तत्सम्बोधने । कुटजादिपञ्चभिः कृतो निष्पादितः कषायः निर्यूहः रक्तामशूलान्वितातीसारं रक्तामशूला रोगविशेषाः प्रसिद्धास्तैर्युक्तमतिसरणं विजयते जयति । तत्र कुटजो वत्सकस्तस्य त्वक्, अब्दो मुस्तकः, बिल्वं बालं श्रीफलफलं, स्वार्थे कः । विषा अतिविषा, उदीच्यं ह्रीवेरं । यथाहुः–'सवत्सकः सातिविषः सबिल्वः सोदीच्यमुस्तैश्च कृतः कषायः । सामे सशूले सहशोणिते च चिरप्रवृत्तेऽपि हितोऽतिसारे' इति ॥ ११ ॥

भाषार्थः-हे बाले! मूंगेकी नवीन कोंपलोंके समान अंगुली, हाथ और ओष्ठवाली! हे चमेलीकी मालासे आभूषित गिरिशिखरोपम कुचवाली! रे रत्नजडित मेखलावाली! कुडाकी छाल, नागरमोथा, बेलगिरी, अतीस और सुगंधवाला इनका क्वाथ रक्त, आम और शूलसे युक्त अतिसारको नष्ट करता है ॥ ११ ॥

अथ महत्गङ्गाधराख्यं चूर्णमाह—

धातक्यामलकीपयोधरवृकीकट्वङ्गयष्टीमधुश्रीजम्ब्वा-
ऽम्रफलास्थिनागरविषाह्रीबेरलोध्रेन्द्रजैः ॥ तुल्यांशै-
र्विहितं सतण्डुलजलं गङ्गाधराख्यं महच्चूर्णं तूर्णम-
पाकरोति सकलं जीर्णातिसारं परम् ॥ १२ ॥

धातकीति ॥ धातक्यादिचतुर्दशद्रव्यैस्तुल्यांशैः समभागैर्विहितं निर्मितं महद्गङ्गाधराख्यं बृहद्गङ्गाधराभिधं चूर्णं रजः सतण्डुलजलं षष्टिकादिधान्यधौततोयेन सह पीतं । सकलं सप्तविधं जीर्णातिसारं पुरातनमतिसरणं तूर्णं शीघ्रमपाकरोति नाशयतीत्यर्थः । यथोक्तं—'संशम्यापां धातुरग्निः प्रवृद्धो वर्चोमिश्रो वायुनाधः प्रणुन्नः । सरत्यतीवातिसारं तमाहुर्व्याधिं घोरं षड्विधं तं वदन्ति । एकैकशः सर्वशश्चातिदोषैः शोकेनान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः' इति । 'साम्यादागन्तुकत्वेनातीसारं भयदं पुनः । वाञ्छन्ति सप्तमं केचिदुदरामयमुत्कटम्' । तत्र धातकी मद्यपुष्पा तस्याः पुष्पाणि आमलकी धात्रीफलं, पयोधरो मुस्तकं, वृकी पाठा, कट्वङ्गः स्योनाकः, यष्टी मधुयष्टी, श्रीः आमं बिल्वफलं, जंबू नीलफला, तस्या अस्थि, आम्रफलास्थि रसालस्य मज्जा, नागरं शुण्ठी, विषा अतिविषा, ह्रिबेरं वालं, लोध्रः तिरीटः, इन्द्रजमिन्द्रयवः ॥१२॥

भाषार्थः-धायके फूल, आँवला, नागरमोथा, पहाडी पाठा, सोनापाठा, मुलहटी, बेलगिरी, जामनकी गुठली, आमकी गुठली, सोंठ, अतीस, सुगंधवाला, लोध और इन्द्रजौ इन चौदह औषधियोंको समान भाग लेकर चूर्ण बनावे । इस बृहद् गंगाधर नामक चूर्णको फांककर ऊपरसे चांवलोंका पानी पीलेवै इससे पुराना अतिसार शीघ्र दूर हो जाता है ॥ १२ ॥

अथ रुधिरातिसारे पाचनमाह--

अयि कन्दुकनिन्दकस्तनि प्रमदारूपमदापहारिणि॥
रुधिरातिसृतौ कषायकः समधुर्दाडिमवत्सकत्वचः॥१३॥

अयीति ॥ अयीति कोमलालापे । हे कन्दुकनिन्दकस्तनि निन्दतस्तच्छीलौ निन्दकौ निन्दहिंसेति वुञ् कन्दुकस्य गेन्दुकस्य निन्दकौ निन्दाशीलौ स्तनौ कुचौ यस्याः तत्सम्बोधने । पुनः प्रमदारूपमदापहारिणि प्रमदयति पुरुषं । मदीहर्षे अच् टाप् । प्रमदायाः उत्तमास्त्रियाः यद्रूपं मनोहराकृतिः तेन यो मदोऽहं रूपलावण्यसम्पन्नेति गर्वस्तमपहर्तुं शीलमस्यास्तत्सम्बोधने । दाडिमवत्सकत्वचः दाडिमो मिष्टकरकः तस्य फलं, वत्सकः कुटजः, अनयोस्त्वक् वल्कलं तस्याः कषायः क्वाथः । कथंभूतः समधुः माक्षिकप्रक्षेपयुक्तः रुधिरातिसृतौ रक्तातिसारनाशने निमित्तं भवतीत्यर्थः। यथोक्तं-'कषायो मधुना पीतस्त्वचौ दाडिमवत्सकात् । सद्यो जयेदतीसारं सरक्तं दुर्निवारणम्' इति ॥ १३ ॥

भाषार्थः-हे कंदुकस्तनी! हे रूपगर्विता स्त्रियोंके मदको हरनेवाली! रक्तातिसारमें अनारके फलकी छाल और कुडाकी छालका क्वाथ शहत मिलाकर पीवै ॥ १३ ॥

आपि च—

चन्दनं विमलतण्डुलाम्बुना संयुतं मधुयुतं सितायुतम् ॥ तृड्विखण्डनमसृग्विखण्डनं खण्डनं प्रचुरदाहमेहयोः ॥ १४ ॥

चंदनमिति ॥ विमलतण्डुलाम्बुना विमलानां निर्मलानां तण्डुलानां शालिषाष्टिकादिधान्यसाराणामम्बुना तोयेन संयुतं युक्तं चंदनं घृष्टश्वेतमलयजं तच्च मधुयुतं सितायुतं च माक्षिकशर्कराभ्यां संमिलितं पीतं सत् तृड्विखण्डनं तृष्णायाः विखण्डनं निराकरणकरं भवति । पुनरसृग्विखण्डनं रक्तातिसारनाशनं च । पुनः प्रचुरदाहमेहयोः प्रचुरौ प्राज्यौ यौ दाहमेहौ गात्रसन्तापप्रमेहौ तयोः खण्डनं भञ्जनं भवतीत्यर्थः । यथोक्तं-'पीतं मधुसितायुक्तं चन्दनं तण्डुलाम्बुना । रक्तातिसारजिद्रक्तपित्ततृड्दाहमेहनुत्' इति ॥ १४ ॥

भाषार्थः-स्वच्छ चांवलोंके पानीमें श्वेतचन्दन घिसकर उसमें शहत और मिश्री मिलाकर पीना तृषा, रक्तातिसार, जलन और प्रमेहको दूर करता है ॥ १४ ॥

कुक्षिशूलामशूलघ्नं विविधास्रातिसारजित् ॥
सेवेत सगुडं बिल्वं बिल्वतुल्यपयोधरे ॥ १५ ॥

कुक्षीति ॥ हे बिल्वतुल्यपयोधरे बिल्वेन श्रीफलेन तुल्यौ समौ पयोधरौ स्तनौ यस्यास्तत्सम्बोधने कुक्षिशूलाद्यामयवान् पुरुषः कुक्षिशूलामशूलघ्नं कुक्षिशूलं कुक्षावुदरे यद्वोदरस्य वामे दक्षिणे वा भागे शूलं व्यथा आमशूलं । 'आटोपहृल्लासवमागुरुत्वं स्तैमित्यमानाहककफप्रसेकैः । कफस्य लिङ्गेन समानलिङ्गमामोद्भवं शूलमुदाहरंति ' इति लक्षणलक्षितं । कुक्षिशूलं च आमशूलं च कुक्षिशूलामशूले ते हन्तीति कुक्षिशूलामशूलघ्नः । पुनः विविधास्रातिसाराजित् विविधो बहुप्रकारो यो रक्तातिसारस्तं जयति । यद्वा विबन्धास्रातिसारजिदिति पाठः । तत्र विबन्धो मूत्रादिरोधः अस्रातिसारश्च तौ जयतिं एतादृशं । सगुडं गुडसहितं बिल्वं सुस्विन्नं बालबिल्वगर्भं शीतं कृत्वा सेवेत् तस्योपभोगं कुर्यात् तत् स्वेदनोदकं चानुपिबेत् । यथोक्तं-' गुडेन भक्षयेत् बिल्वं रक्तातिसारनाशनम् । आमशूलविबन्धघ्नं कुक्षिरोगहरं परम् ' इति ॥ १५ ॥

भाषार्थः-हे बिल्वस्तनी ! गुडमें बेलगिरी मिलाकर सेवन करै तौ कुक्षिशूल, आमशूल, तथा अनेक प्रकारके रक्तातिसार दूर हो जाते हैं ॥ १५ ॥

असाध्यमतिसारिणं दृष्ट्वा भगवन्नामोच्चारणाभिधं परमौषधमुपदिशति--

तृट्श्वासकासज्वरशोफमूर्च्छाहिक्कान्नविद्वेषणवान्तिशूलैः ॥
युक्तोऽतिसारी स्मरतु प्रसह्य गोविन्ददामोदरमाधवेति १६॥

तृडिति ॥ तृषादिभिर्दशोपद्रवैः युक्तश्चेदतिसारी तदा स प्रसह्य सर्वोपद्रवं सोढ्वा बलात्कारेण गोविन्ददामोदरमाधवेति स्मरतु सन्निहितकालत्वात् । यथोक्तं-'त्वामेव याचे मम देहि जिह्वे समागते दण्डधरे कृतान्ते । आवर्तयेथा मधुराक्षराणि गोविन्द दामोदर माधवेति' ॥ अपिच-'शोथं शूलं ज्वरं मूर्च्छा श्वासं कासमरोचकं । छर्दिं तृष्णां च हिक्कां च दृष्ट्वातिसारिणं त्यजेत्' इति । अतिसारिणैतदवश्यं त्याज्यम् । ' स्नानावगाहनाभ्यंगं गुरुस्निग्धादिभोजनं । व्यायाममग्निसन्तापमतिसारी विवर्जयेद्' इति ॥ १६ ॥

भाषार्थः-जो अतिसाररोगी तृषा, श्वास, खांसी, ज्वर, सूजन मूर्च्छा, हिचकी, अन्नमें अरुचि, बमन और शूल इनसे पीडित

हो तौ गोविन्द, दामोदर, माधव इन नामोंका हठपूर्वक स्मरण करै ॥ १६ ॥

अथ ग्रहणीप्रतीकारमाह—

यवानीनागरोशीरधनिकातिविषाघनैः ॥
बलाबिल्वद्विपर्णीभिर्दीपनं पाचनं स्मृतम् ॥ १७ ॥

यवानीत्यादिना ॥ यवान्यादिदशभिर्द्रव्यैर्ग्रहण्यां दीपनं रुचिकरं पाचनं दोषाणां पाचकः कषायो भवति । तत्र यवानी ब्रह्मदर्भा, नागरं शुण्ठी, उशीरमभयं, धनिका धन्याकं, अतिविषा विषा, घनो मुस्ता, बला वाट्यालका, बिल्वं श्रीफलवृक्षस्यामफलम्, द्विपर्णी शालपर्णी पृश्निपर्णी च । ग्रहण्याः रूपमुक्तम्—'अग्न्यधिष्ठाननाडी च ग्रहणीति निगद्यते'। ग्रहण्याः निदानसंप्राप्ती यथा—'अतीसारे निवृत्तेऽपि मंदाग्नेरहिताशनः । भूयः संदूषितो वह्निर्ग्रहणीमपि दूषयेत् । एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमुच्छ्रितैः । सा दुष्टा बहुशो भुक्तमाममेव विमुञ्चति । पक्वं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवं । ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः' इति ॥ १७ ॥

भाषार्थः—अजवायन, सोंठ, धनियां, अतीस, नागरमोथा, खरैटी, बेलगिरी, शालपर्णी और पृश्निपर्णी इनका चूर्ण दीपन पाचन होता है ॥ १७ ॥

अत्र कषायादीनाह—

पुनर्नवावह्लिजबाणपुङ्खाविश्वाग्निपथ्याचिरबिल्वबिल्वैः ॥ कृतः कषायःशमयेदशेषान् दुर्नामगुल्मग्रहणीविकारान् ॥ १८ ॥

पुनर्नवेत्यादिभिरष्टाभिः ॥ पुनर्नवादिभिः कृतः कषायः पीतः सन् अशेषानखिलान् दुर्नामाद्यामयान् शमयेत् शान्तिं नयेत् । तत्र दुर्नामा अर्शः, गुल्मः कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरूपः, ग्रहणी एतेषां विकारान् । तत्र पुनर्नवा वृश्चीरः, वह्लिजं मरीचं, बाणपुङ्खा शरपुङ्खा, विश्वा शुण्ठी, अग्निश्चित्रकः, पथ्या हरीतकी, चिरबिल्वः करञ्जः, बिल्वमामबिल्वम् ॥ १८ ॥

भाषार्थः—सांठकी जड, कालीमिरच, सरफोंका, सोंठ, चीता, हरड़, कंजा और बेलगिरी इनका काढा बवासीर, गुल्मरोग, ग्रहणी रोगको जड़से दूर कर देता है ॥ १८ ॥

शुण्ठीछिन्नरुहाविषाजलधरैस्तुल्यैः कषायः कृतो मन्दाग्नौ ग्रहणीगदेऽपि सततं सामानुबन्धे हितः॥ शुण्ठीकल्ककृतं घृतं प्रपिबतः पाण्ड्वामकासापहं स्याद्वायोरनुलोमनं ग्रहणिका वेगेन जङ्गम्यते ॥ १९ ॥

शुण्ठीति ॥ तुल्यैः समांशैः शुण्ठ्यादिचतुर्भिः कृतो विहितः कषायः क्वाथः मन्दाग्नौ मन्दोऽतीक्ष्णोऽग्निर्यस्मिन् पुनः सामानुबन्धे आमेन सह अनुबन्धः सम्बन्धो यस्य एतादृशे ग्रहणीगदे संग्रहणीरोगे हितोऽनुकूलः। तत्र शुण्ठी नागरं, छिन्नरुहा वत्सादनी, विषा अतिविषा, जलधरो मुस्ता। अत्र घृतमप्याह-शुण्ठीति। शुण्ठीकल्ककृतं शुण्ठ्याः कल्कं चूर्णं तेन साधितं घृतं सर्पिः प्रपिबतः पानं कुर्वतः पुंसः पांडामकासापहं स्यात्। पाण्डुः रोगविशेषः, आमो रोगविशेषः, कासः क्षवथुः, तेषां नाशनं स्यात्। वायोरपानवातस्यानुलोमनमधः प्रवर्तनं भवति ग्रहणिका संग्रहणी वेगेन सत्वरं जङ्गम्यते अतिशयेन गच्छति ॥ १९ ॥

भाषार्थः-सोंठ, गिलोय, अतीस और नागरमोथा इन चारोंको बराबर बराबर लेकर काढा बनावै, यह क्वाथ मन्दाग्नि और आमसहित ग्रहणीरोगको दूर करता है. सोंठके चूर्णको घीमें पकाकर इस घीका सेवन करै तो पांडुरोग आम और खांसी दूर हो जाते हैं. अधोवायुकी प्रवृत्ति होती है और संग्रहणी रोग शीघ्र जाता रहता है ॥ १९ ॥

पाठाविषाकुटजवृक्षफलत्वगब्दतिक्तामदारसजनागरबिल्वचूर्णं॥ सक्षौद्रतण्डुलजलं ग्रहणीप्रवाहरक्तप्रवाहगुदरुग्गुदजेषु दद्यात् ॥ २० ॥

पाठेति ॥ वैद्यः ग्रहणीप्रवाहरक्तप्रवाहगुदरुग्गुदजेषु रोगेषु पाठादीनां चूर्णं रजः सक्षौद्रतण्डुलजलं माक्षिकेण सहितं तण्डुलानां व्रीहिसाराणां प्रक्षालितानां तोयं दद्यात्। पूर्वं चूर्णं मुखे निक्षिप्य ततो मधुमिश्रितं तन्दुलोदकं पिबेदित्यर्थः। तत्र ग्रहणी संग्रहणी प्रवाहः प्रवाहिका रक्तप्रवाहो रक्तातीसारः गुदरुक् गुदपीडा गुदजोऽर्शस्तेषु। तत्र पाठा विषा, कुटजवृक्षस्य फलमिंद्रयवः, तस्य त्वक्च, अब्दो मुस्ता, तिक्ता कटुकी, मदा धातकी, रसजं रसाञ्जनम्, नागरं बिल्वम् ॥ २०

भाषार्थः—पाठा, अतीस, इन्द्रजौ, कुडाकी छाल, मोथा, कुटकी, धायके फूल, रसौत, सोंठ और बेलगिरी इनका चूर्ण फांककर ऊपरसे शहत मिला हुआ चांवलोंको जल पीनेसे ग्रहणीरोग प्रवाहिका, रक्तातिसार, गुदरोग तथा ववासीर जाते रहतेहैं॥२०॥

अथ चन्द्रकलाभिधं चूर्णमाह––

तुल्यांशं सकलं किरातकटुकामुस्तेन्द्रजत्र्यूषणं भा-
गश्चन्द्रकलामितः कुटजतो भागद्वयं चित्रकात् ॥
चूर्णं चन्द्रकलाभिधं गुडपयोयुक्तं च पाण्डुज्वराती-
सारारुचिकामलाग्रहणिकागुल्मप्रमेहापहम् ॥ २१ ॥

तुल्यांशमिति ॥ अत्र किरातकुटकामुस्तेन्द्रजत्र्यूषणं सकलं तुल्यांशं ग्राह्यं । एतेषां चूर्णं चन्द्रकलाभिधं नाम भवति । तच्च गुडपयोयुक्तं द्विगुणमिश्रितं शीतलांबुना पीतं सत् पाण्डुज्वरातीसारारुचिकामलाग्रहणिकागुल्मप्रमेहापहं भवतीत्यन्वयः ॥ २१ ॥

भाषार्थः—चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सोंठ, कालीमिरच, पीपल ये सब समान भाग ले, कुडाकी छाल १६ भाग, चीता २ भाग, इन सबके चूर्णको फांककर ऊपरसे गुडका पानी पीनेसे पांडुरोग, ज्वर, अतिसार, अरुचि, कामला, ग्रहणीरोग, गुल्मरोग, प्रमेह ये सब जाते रहते हैं इस चूर्णका नाम चन्द्रकला है ॥ २१ ॥

अजाजिकाहिङ्गुपटुत्रयाणां क्षारद्वयग्रन्थिकटुत्रया-
णाम् ॥ चव्याजमोदामिसिचित्रकाणां चूर्णं समांशं
विदधीत धीमान् ॥ २२ ॥ कोष्णाम्बुना कोलरसन
युक्तं तक्रान्वितं काञ्जिकमिश्रितं वा ॥ पेपीयमानं
सुखदं नृणां स्याद्गुल्मग्रहण्यामगदाङ्कुरेषु ॥ २३ ॥

भाषार्थः—जीरा, हींग, तीन प्रकारके नमक, दो प्रकारके खार, पीपलामूल, त्रिकुटा, चव्य, अजमोद, सौंफ, चीता इनको समान भाग लेकर चूर्ण बनावै. इस चूर्णकी फंकी लेकर गुनगुना पानी, वा बेरका रस, वा मठा, वा कांजी उपरसे पीले तौ गुल्मरोग, ग्रहणी, आमदोष और मस्सोमें हितकारी है ॥ २२ ॥ २३ ॥

चूर्णान्तरमाह—

क्षारद्वन्द्वपटुत्रिकत्रिकटुकैश्चव्याजमोदानलैः कृष्णा-
मूलकहिङ्गुजीरमिशिभिस्तुल्यैर्विधेयं रजः ॥ पीतं
कोष्णजलेन कोलपयसा तक्रेण वान्यौषधाद्धृत्क्षुद्गु-
ल्मगुदाङ्कुरग्रहणिषु प्रायः प्रियं प्रेयसि ॥ २४ ॥

क्षारद्वन्द्वेत्यादिना ॥ क्षारद्वन्द्वं क्षारयोः सर्जिकायावशूकयोर्द्वन्द्वं पटुत्रिकं त्रयाणां सङ्घः । संख्यायाः सङ्घसूत्राध्ययनेष्विति कन् । पटूनां विड्रुचकसैन्धवानां लवणानां त्रिकं । त्रिकटुकं त्रयाणां कटुकानां मरीचशुण्ठीपिप्पलीनां समाहारः एतेषामितरेतरयोगः तैः चव्यं चविका च अजमोदा च अनलश्चित्रकश्च तैः कृष्णामूलकं पिप्पलीमूलकं च हिंगु च जीरकश्च मिशिः शतपुष्पा च ताभिः एतैः पञ्चदशभिः तुल्यैः रजश्चूर्णं विधेयं कर्तव्यं । तच्च हृत्क्षुद्गुल्मगुदाङ्कुरग्रहणिषु हृद्रोगे क्षुन्मान्द्ये गुल्मे गुदाङ्कुरे अर्शसि ग्रहण्यां च कोष्णजलेन ईषदुष्णेन पानीयेन । यद्वा कोलपयसा स्वल्पबदरीक्वथितजलेन । अथवा तक्रेण सह पीतं सत् हे प्रेयसि हे प्रियतमे अन्यौषधादन्यस्मात् भेषजात् प्रायो बाहुल्येन प्रियं सुखकरं भवतीत्यर्थः ॥ २४ ॥

भाषार्थः—सज्जीखार, जवाखार, तीनों प्रकारके नमक, त्रिकुटा चव्य, अजमोद, चीता, पीपलामूल, हींग, जीरा, सौंफ इन सबको बराबर लेकर चूर्ण बनावै. इस चूर्णका कुछ गरमजल, बेरके रस अथवा तक्रकेसाथ सेवन करनेसे हृद्रोग, क्षुधामान्द्य, बवासीर और ग्रहणीरोग जाते रहतेहैं. हे प्रिये! यह चूर्ण और औषधियोंसे उत्तम है ॥ २४ ॥

अन्यदप्याह-

द्विक्षारषट्कटुपटुव्रजहिङ्गुदीप्यैः स्यात्सारलुङ्गबदरैकरसेन युक्तम् ॥ श्लेष्मानिलग्रहणिकागुदजे प्रशस्तं लोकत्रयैकमतिदीपनपाचनेऽलम् ॥ २५ ॥

द्विक्षारेति ॥ द्वौ च तौ क्षारौ च द्विक्षारौ सर्जिकायावक्षारौ, षट्कटु षडूषणं। तद्यथा- 'पञ्चकोलं समरिचं षडूषणमुदाहृतं' इति । पटुव्रजः लवणपञ्चकं । तद्यथा 'सैन्धवं रुचकं चैव विडं सामुद्रकं गडम्' इति । हिङ्गु रामठं, दीप्यो यवानी एतेषां चूर्णं कार्यं । तच्च सारलुङ्गबदरैकरसेन युक्तं सारोऽम्लसारः अम्लवेतस इति यावत्। लुङ्गः मातुलुङ्गः, बदरो वारिबदरं प्राचीनामलकमिति यावत्, एषां मध्ये तच्चूर्णमेकस्यापि रसेन भावितं सत् श्लेष्मानिलग्रहणिकागुदजे श्लेष्मादीनां द्वन्द्वैक्यं । कफवातसंग्रहण्यर्शःसु प्रशस्तं योग्यं । कथम्भूतं लोकत्रयैकं त्रिलोक्यां मुख्यं । पुनः अतिदीपनपाचने अतिशयदीपने पाचने च अलं समर्थम् ॥ २५ ॥

भाषार्थः-सज्जीखार, जवाखार, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, कालीमिरच, सेंधानमक, कालानमक, खारीनमक, सांभरनमक, काचकानमक, हींग और अजमायन इनको पीसकर चूर्ण बनावै. और इसमें अमलवेत, विजौरा अथवा पानीआंवलेके रसकी भावना देवै. यह चूर्ण कफ, वात, ग्रहणी और अर्शरोग इनके दूर करनेमें एकही है और अग्निको संदीपन करने वा खाये हुएको पचानेमें बहुतही उपयोगी है. ॥ २५ ॥

चूर्णान्तरमाह-

चूर्णं चित्रकचव्यश्रीविश्वभेषजनिर्मितम् ॥
तक्रेण सहितं हन्ति ग्रहणीं दुःखकारिणीम् ॥ २६॥

चूर्णमिति ॥ चित्रकादिचतुर्भिर्निर्मितं चूर्णं तक्रेण दण्डाहतेन सहितं सार्धं सेवितं दुःखकारिणीं ग्रहणीं हन्ति । तत्र चित्रकचव्ये प्रसिद्धे, श्रीर्बिल्वं, विश्वभेषजं शुण्ठी ॥ २६ ॥

भाषार्थः-चीता, चव्य, बेलगिरी और सोंठ इनके चूर्णका मठेके साथ सेवन करना दुखदायी ग्रहणी रोगको दूर करता है ॥ २६ ॥

अन्यच्च-

रुचकाग्निमरीचानां चूर्णं तक्रेण सेवितम् ॥
ग्रहण्युदरगुल्मार्शःक्षुन्मान्द्यप्लीहनाशनम् ॥ २७ ॥

रुचकेति ॥ रुचकादित्रयाणां चूर्णं तक्रेण सार्धं सेवितं पीतं सत् ग्रहण्यादिरोगाणां नाशनं नाशकरं भवति । तत्र रुचकं सौवर्चलं, अग्निश्चित्रकं, मरीचं धर्मपत्तनं, ग्रहणी प्रवाहिका, उदरमुदररोगः, गुल्मः कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरूपी रोगः, अर्शो दुर्नाम, क्षुन्मान्द्यं भोजनेच्छायाः मन्दत्वं, प्लीहा गुल्मः, वामकुक्षिस्थमांसखण्डमिति यावत् ॥ २७ ॥

भाषार्थः-कालानमक, चीता और कालीमिरच इनका चूर्ण मठेके साथ सेवन करना ग्रहणी, उदररोग, गुल्मरोग, बवासीर, अग्निमान्द्य, और तापतिल्लीको दूर करता है ॥ २७ ॥

अत्राज्यमाह-

आज्यं पयोधरजलेन्द्रजबालबिल्वह्रीबेरमोचरसकल्कयुतं विपक्वम् ॥ आमानुबन्धसहितं रुधिरान्वितं च सद्यो निहन्ति गृहिणि ग्रहणीविकारम् ॥ २८ ॥

इति श्रीवैद्यजीवने अतीसारग्रहणीप्रतीकारो नाम
द्वितीयो विलासः ॥ २ ॥

आज्यमिति ॥ पयोधरो मुस्ता, जलजमुशीरं, इन्द्रजः कुटजबीजं, बालबिल्वं लघुबिल्वपेशी, ह्रीबेरमुदीच्यं, मोचरसः शाल्मलीनिर्यासः, एतेषां कल्केन युतं युक्तं एतादृशं विपक्वमाज्यं घृतं पीतं सत् हे गृहिणि! आमानुबन्धसहितं सामं रुधिरान्वितं च ग्रहणीविकारं सद्यः शीघ्रं निहन्तीत्यर्थः । आजं पयोजलधरेन्द्रजबालबिल्वेति वा पाठः । तत्र आजं अजासम्बन्धिपयः जलधरादिकल्कयुतं विपक्वं ग्रहणीविकारं सद्यो निहन्तीत्यर्थः । अतिसारिणैतदवश्यं वर्जनीयं 'स्नानावगाहनाभ्यङ्गान्गुरुस्निग्धादिभोजनं । व्यायाममग्निसन्तापमतिसारी विवर्जयेत्' इति । स्नानमुद्धृतजलेन । अवगाहनं नद्यादाविति भेदः ॥ २८ ॥

इति श्रीकुलावधूतश्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्धरिहरानन्दभारतीशिष्यब्र-
ह्मावधूतश्रीसुखानन्दनाथविरचितायां सुखानन्द्यां लोलिम्बदीपिकायाम-
तीसारग्रहणीप्रतीकारनाम्नो द्वितीयविलासस्य प्रकाशार्थः ॥ २ ॥

भाषार्थः–नागरमोथा, खस, इन्द्रजौ, बेलगिरी, नेत्रबाला, और मोचरस इनका कल्क डालकर घृत पकावै। हे प्रिये! यह घृत आम और रक्तसहित ग्रहणी रोगको शीघ्र नष्ट करता है ॥ २८ ॥

इति वैद्यजीवनभाषाटीकायां द्वितीयो विलासः ॥ २ ॥

अथ तृतीयो विलासः।

अथ कासश्वासादीनां चिकित्सामाह–

अतः परं कोमलवाणि कासश्वासप्रतीकारमुदीरयामः ॥
निहन्ति कासं गुरुपञ्चमूलीकृतः कषायश्चपलासहायः॥ १ ॥

अतः परमिति ॥ हे कोमलवाणि कोमला मनोहरा वाणी यस्याः तत्सम्बो-धने। अतःपरमतीसारादिकथनोत्तरं कासश्वासयोः प्रतीकारं चिकित्सामुदीरयामःकथ-यामः। तत्र चपलासहायः पिप्पलीचूर्णसंयुक्तो गुरुपञ्चमूलीकृतः कषायः गुरुपञ्चमूली बृहत्पञ्चमूली पूर्वोक्ता तया रचितः क्वाथः पीतः सन् कासं क्षवथुं निहन्तीत्यर्थः। यथोक्तं–'पञ्चमूलीकृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः। रसान्नमश्नतो नित्यं वातकासमुदस्यति' इति ॥ १ ॥

भाषार्थः–हे मधुरालापिनि प्रिये! अब हम यहांसे खांसी और श्वासकी चिकित्सा वर्णन करते हैं। बृहत्पंचमूलके क्वाथमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे खांसी जाती रहती है ॥ १ ॥

कासश्वासयोर्गुटिकामाह–

घनविश्वशिवागुडजा गुटिका त्रिदिनं वदनाम्बुज-

मध्यधृता ॥ हरति श्वसनं कसनं ललने ललनेवं हिमं हृदयोपगता ॥ २ ॥

घनेति ॥ घनो मुस्ता, विश्वं शुण्ठी, शिवा हरीतकी, केनचित्प्रमाणेन मिलितानां चूर्णितानां एतेषां द्विगुणेन गुडेन जनिता वटिका निर्जलीकार्या। सा च त्रिदिनं दिनत्रयं वदनाम्बुजस्य मुखकमलस्य मध्येऽभ्यन्तरे धारिता सती हे ललने हे कामिनि! श्वसनं श्वासरोगं, कसनं कासरोगं च हरति विनाशयति। का कमिव हृदयोपगता वक्षःसंलग्ना ललना हिममिव शिशिरं यथा ॥ २ ॥

भाषार्थः—हे ललने ! नागरमोथा, सोंठ, हरड़की छाल इन तीनोंको पीस दुगुने पुराने गुड़मे मिलाकर गोली बांधले. इस गोलीको तीन दिन मुखमें रखनेसे खांसी और श्वास ऐसे जाते रहते है जैसे हृदयालिङ्गिता युवती जाड़ेको खो देती है ॥ २ ॥

अत्रावलेहमाह—

आजस्य मूत्रस्य शतं पलानां शतं पलानां च कलिद्रुमस्य ॥ पक्कं समध्वाशु निहन्ति कासं श्वासं च तद्वत्सबलं बलासम् ॥ ३ ॥

आजस्येति ॥अजाया इदमाजं अजासम्बन्धि मूत्रं प्रस्रावस्तस्य पलानां शतं शतपलपरिमितं, कलिद्रुमो बिभीतकः सोऽपि शतपलपरिमितो ग्राह्यः। एतदुभयं मधुना सह पक्कं अवलेहीभूतमवलीढं सत् आशु त्वरितं सबलं कासं बलासं च नितरां हन्ति। सबलमिति त्रयाणां विशेषणं। उक्तं च—'प्रस्थं विभीतकानामस्थिविना साधयेदजामूत्रे। अयमवलेहो लीढो मधुसहितः श्वासकासघ्नः' इति ॥ ३ ॥

भाषार्थः—बकरीका मूत्र १०० पल, बहेड़ा १०० पल इनको पकाकर शहत मिलाकर रखले, इनके सेवन करनेसे खांसी, श्वास और बलवान् कफभी दूर होजाते हैं ॥ ३ ॥

अत्रार्द्रकपाकमाह—

आर्द्रादर्धतुला गुडादपि तथार्धांशं च कुस्तुम्बरीदीप्यायोजरणात्रिजातजलदाद्दार्व्या पंचेद्युक्तितः ॥

लेहो[12] रत्नकले[11] तवैव[14] कथितः[16] प्राणप्रियायाः[13] मया[15]
कासार्शोज्वरपीनसश्वयथुरुग्गुल्मक्षयध्वंसनः[11] ॥ ४ ॥

आर्द्रादिति ॥ आर्द्रात् आर्द्रकरसात् अर्धतुला पञ्चाशत्पलानि तथा तेन प्रकारेण गुडादपि इक्षुसाराच्च पञ्चाशत्पलानि कुस्तुम्बरी धान्याकं, दीप्या यवानी अयो लोहचूर्णं, जरणा कृष्णजीरकं, त्रिजातं समानि त्वगेलापत्राणि, जलदो मुस्ता, एभ्योष्टभ्यश्च अर्धांशं यथा सर्वेषामष्टानां मानं पञ्चविंशतिपलानि भवन्ति तथेत्यर्धा-ंशस्य व्याख्या । एतत्सर्वं दार्व्या गोजिह्वया सह युक्तितो लेहवत् पचेत् पाकं कुर्यात् । हे रत्नकले रत्नेषु कला अंशमात्रं यस्याः सा तत्सम्बोधने । रत्नकला लोलिम्बराजप-त्नीति प्रसिद्धं । कासार्शोज्वरपीनसश्वयथुरुग्गुल्मक्षयध्वंसनः कासः क्षवथुः अर्शो दुर्नामकं ज्वरो महागदः पीनसो नासारोगः प्रतिश्यायः श्वयथुरुक् शोथरोगः गुल्मो वातगुल्मः क्षयः कासरोगविशेषो यक्ष्मा एतेषां रोगाणां ध्वंसनो नाशकर्ता एतादृशो-ऽयमवलेहो जिह्वया भोजनं प्राणप्रियायाः प्राणेभ्योपि प्रीतिविषयायाः तवैव सम्बन्धे मया कथितः उक्तः । अन्येभ्यो गोपित इति शेषः ॥ ४ ॥

भाषार्थः–हे रत्नकले ! अदरखका रस पचास पल, गुड़ पचास पल, धनियां, अजवायन, लोहचूर्ण, कालाजीरा, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागरमोथा ये सब २५ पल लेकर अग्निपर चढाके करछीसे चलाता रहै. इस अवलेहसे खांसी, ववासीर, ज्वर, पीनस, सूजन, गुल्मरोग और क्षयीरोग जाते रहते हैं, हे प्राणप्रिये ! यह प्रयोग मैंने तुझहीसे कहा है ॥ ४ ॥

अत्र चिन्तामणिनामचूर्णमाह—

रास्नाबलापद्मकदेवदारुफलत्रिकत्र्यूषणवेल्लचूर्णम्[1] ॥
चिन्तामणिक्षौद्रघृतोपपन्नं[2] श्वासं[3] च[4] कासं[5] च[6]
निराकरोति ॥ ५ ॥

रास्नेति ॥ रास्नाद्येकादशभिश्चिन्तामणिनाम चूर्णं भवाति । तच्चासमांशाभ्यां क्षौद्रघृताभ्यां उपपन्नं युक्तं लीढं सत् श्वासं कासं च निराकरोति दूरीकरोतीत्यर्थः । तत्र रास्ना भुजङ्गाक्षी, बला वाट्यालका, पद्मकं पद्मकाष्ठं, देवदारुः, फलत्रिकं त्रिफला, त्र्यूषणं त्रिकटुः, वेल्लं विडङ्गं । 'भजतो विषरूपत्वं तुल्यांशे मधुसर्पिषी' ॥ ५ ॥

भाषार्थः—रास्ना, खरैटी, पदमाख, देवदारु, त्रिफला, त्रिकुटा, और बायबिडंग इन सब औषधियोंको बराबर लेकर चूर्ण बनावै इस चूर्णका असमान शहत और घीके साथ सेवन करै तौ श्वास और खांसी दूर होजाते हैं, इसका नाम चिन्तामणि चूर्ण है ॥ ५॥

अत्र क्वाथमाह—

वासाहरिद्रामगधागुडूचीभार्ङ्गीघनानागरधावनीनाम् ॥ क्वाथेन मारीचरजोन्वितेन श्वासः शमं याति न कस्य पुंसः ॥ ६ ॥

वासेति ॥ मारीचरजोन्वितेन मरीचचूर्णयुक्तेन वासाद्यष्टानां क्वाथेन कस्य पुंसः श्वासः शमं न याति । अपि तु सर्वस्यैव शमं यातीत्यर्थः । अत्र वासादयः स्पष्टार्थाः । घना रुद्रजटा ॥ ६ ॥

भाषार्थः—अडूसा, हलदी, पीपल, गिलोय, भाडंगी, रुद्रजटा, सौंठ और कटेरी, इनके क्वाथमें कालीमिरचका चूर्ण डालकर पीनेसे कैसाहीरोगी क्यों नहो सबका श्वास जाता रहता है. ॥ ६ ॥

लवङ्गादिगुटिकामाह—

तुल्या लवङ्गमरिचाक्षफलत्वचः स्युः सर्वैः समो निगदितः खदिरस्य सारः ॥ बब्बूलवृक्षजकषाययुतं च चूर्णं कासान्निहन्ति गुटिका घटिकाष्टकान्ते ॥ ७ ॥ वातं निर्दलयन्कफं कवलयन्नुन्मूलयन्पीनसं दृष्टिं निर्मलयन्प्रभां प्रबलयन्हृद्रोगमुत्सादयन् ॥ निःशेषं जठरामयं प्रशमयन्नुद्दीपयन्पावकं कासश्वासनिरासंसाधनमसौ विश्वाकषायः स्मृतः ॥ ८ ॥

तुल्या इति ॥ लवङ्गमरिचाक्षफलत्वचः, लवङ्गं देवकुसुमं, मरिचं वेल्लजं, अक्षफलत्वक् अक्षः कलिद्रुमः तस्य फलं तस्य त्वक् वल्कलं । एते लवङ्गादयस्तुल्याः

स्युः समांशा अपेक्षिताः । खदिरस्य सारो दन्तधावनस्य निर्यासः, खादिरः सर्वैः समः समानो निगदित उक्तः। एतेषां चूर्णं बब्बूलवृक्षजकषाययुक्तं बब्बूलवृक्षः कफान्तकतरुः तस्य त्वचः कषायेण युतं युक्तं कृत्वा वटिका कार्या। सा गुटिका खादिता घटिकाष्टकान्ते अष्टघटिकापरिमितकालानन्तरम् कासान् पञ्चप्रकारान् निहन्ति नाशयति । ते यथा–'पञ्च कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः । क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम् ' इति ॥ ७ ॥ ८ ॥

भाषार्थः–लौंग, काली मिरच, बहेड़ेका बकल इन तीनोंको बराबर बराबर ले और इन तीनोंके बराबर खैरसार लेवै, इनको बबूलकी छालके क्वाथमें भावना देकर गोली बनालेवै, इस गोलीको मुखमें डालकर रस चूसता रहै तौ सब प्रकारकी खांसी आठ घड़ी पीछे जाती रहती है ॥ ७ ॥ सोंठका क्वाथ बादीको दूर करता है, कफको खा जाता है, पीनसको जडसे खो देता है, दृष्टिको निर्मल कर देता है, कांतिको बढाता है, हृदयके रोगों को नष्ट कर देता है, उदररोगोंको रहनेही नहीं देता है, जठराग्निको बढ़ाता है, खांसी और श्वासके दूर करनेका साधनरूप है॥८॥

अथ लोलिम्बराजः स्वकान्तायाः वैयाकरणीत्वं द्योतयन् शुण्ठीक्वाथमाह–

रूपं कीदृक् कमलवदने नुः परे सौ गिरेः स्यात्
सम्बुद्धिः का मधुरवचने काग्निबीजस्य षष्ठी॥ कस्य
क्वाथः श्वसनशमनो वल्लभेनेति पृष्टा विद्वद्वन्द्या द्रुत-
मिदमदात्सोत्तरं नागरस्य ॥ ९ ॥

रूपमिति ॥ हे कमलवदने कमलमिव वदनं यस्याः तत्सम्बोधने। भो तामरसास्ये नुर्नृशब्दस्य सौ परे प्रथमैकवचने परतः कीदृक् रूपं । भवतीति शेषः । पुनः हे मधुरवचने भो माधुर्यविशेषभाषिणि ! गिरेर्गोत्रस्य सम्बुद्धिः सम्बोधने प्रथमैकवचनं का किंप्रकारा । तथाग्निबीजस्य रेफस्य षष्ठीविभक्तिः का । श्वसनशमनः शमयतीति शमनः श्वसनस्य श्वासरोगस्य शमनो नाशकर्ता एतादृशः क्वाथः कस्य भवतीतीत्थं वल्लभेन कान्तेन पृष्टा कृतप्रश्ना विद्वद्वन्द्या विद्वद्भिर्दक्षैर्वन्द्या वन्दनीया सा

रत्नकला इदं नागरस्येति उत्तरं प्रतिवाक्यं द्रुतं तूर्णमदात् । तत्र ना अग रस्य नागरस्य इत्यन्तर्लापिकायां व्यस्तजातिरूपमुत्तरं दत्तवतीत्यर्थः । यथाह– ' वातं निर्दलयन् कफं कवलयन्नुन्मूलयन् पीनसं दृष्टिं निर्मलयन् प्रभां प्रबलयन् हृद्रोगमुत्सारयन् । निःशेषं जठरामयं प्रशमयन्नुद्दीपयन् पावकं कासश्वासनिराससाधनमसौ विश्वाकषायः कृतः ' ॥ ९ ॥

भाषार्थः–लोलिम्बराज अपनी स्त्रीसे पूछते हैं कि हे कमलानने ! नृ शब्दसे सु परे कैसा रूप बनता है ? हे मधुरभाषिणी ! गिरि शब्दके पर्य्यायवाची अग शब्दका सम्बोधनमें कैसा रूप होता है ? अग्निबीज रेफका षष्ठी विभक्तिके एकवचनमें कैसा रूप होता है ? और हे प्राणप्यारी ! श्वासरोगका नाश करनेवाला किस औषधका काढा होता है, यह सुनतेही विद्वानोंसे वन्दनीय रत्नकलानें चारों प्रश्नोंका उत्तर एकही बातमें दे दिया अर्थात् नागरस्य (ना, अग, रस्य,) सोंठका क्वाथ ॥ ९ ॥

क्वाथान्तरमाह—

अयि रत्नकले नीलनलिनच्छदवीक्षणे ॥
सिंहीकषायः सकणः कासग्रासकरः क्षणात् ॥ १० ॥

अयीति ॥ अयीत्यामन्त्रणे । हे रत्नकले हे नीलनलिनच्छदवीक्षणे ! नीलं नीलवर्णविशिष्टं यन्नलिनमरविन्दं तस्य यो छदः पत्रं तद्वदीक्षणे नेत्रे यस्याः तत्सम्बोधने सकणः पिप्पलीचूर्णयुक्तः सिंहीकषायः कण्टकार्याः क्वाथः स पीतः क्षणात् दशपलपरिमितात्कालात् कासग्रासकरः कासस्य कासरोगस्य ग्रासं कवलं करोतीत्येतादृशो भवति । यथोक्तं–' कण्टकारीकृतः क्वाथः सकृष्णः सर्वकासहा' इति ॥ १० ॥

भाषार्थः–हे नलिनीदललोचने ! रत्नकले ! कटेरीकी जडके क्वाथमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे खांसी तत्काल जाती रहती है ॥ १० ॥

अत्र चूर्णमाह—

पिप्पलीपिप्पलीमूलबिभीतकमहौषधैः ॥
मधुना सेवितैः कासः प्रशाम्यति कुतूहलम् ॥ ११ ॥

पिप्पलीति ॥ मधुना माक्षिकेण सह सेवितैरुपभुक्तैः पिप्पल्यादिचतुर्णां चूर्णैः कासः कासरोगः शाम्यति शान्तो भवतीति कुतूहलं । स्वल्पोपायेन महद्गुणं भवतीत्यद्भुतम् ॥ ११ ॥

भाषार्थः–पीपल, पीपलामूल, बहेडा और सोंठ इनका क्वाथ शहत मिलाकर सेवन करनेसे खांसी आश्चर्योत्पादक रीतिसे शान्त हो जाती है ॥ ११ ॥

अवलेहान्तरमाह—

कटुतैलेन संयुक्तो गुडो यावन्न सेवितः ॥ तावन्नश्यति किं श्वासः पीयूषमधुराधरे ॥ १२ ॥ सेवितं मधुखण्डाभ्यां चूर्णं मरिचजं यदि ॥ किमर्थं क्रियते चिन्ता श्वासकासपराजितैः ॥ १३ ॥

कटुतैलेनेति ॥ हे पीयूषमधुराधरे पीयूषममृतमिव मधुरो मिष्टोऽधरोष्ठोयस्याः तत्सम्बोधने यावत् यावत्कालपर्यन्तं कटुतैलेन सर्षपस्नेहेन संयुक्तः सम्यक्प्रकारेण मिलितः गुडः इक्षुपाको न सेवितो नोपभुक्तः तावत् तावत्कालपर्यन्तं किमिति प्रश्ने ! श्वासः श्वासरोगो नश्यति । अपितु नश्यतीत्यर्थः । यथोक्तं—'गुडं कटुकतैलेन मिश्रयित्वा समं लिहेत् । त्रिसप्ताहःप्रयोगेण श्वासं निर्मूलतां नयेत्' इति ॥ १२ ॥ १३ ॥

भाषार्थः–हे सुधाधरे! जबतक सरसोंके कडवे तेलमें गुड़ मिलाकर सेवन नहीं किया जाता है तबतक क्या श्वासरोग दूर हो सकता है अर्थात् इसी औषधके सेवनसे श्वासरोग जाता है ॥ १२ ॥ जो काली मिरचके चूर्णको शहत और खांड मिलाकर चाटै तौ श्वास और खांसीसे पराजित मनुष्यको चिन्ता ही न करनी चाहिये ॥ १३ ॥

रावणस्य सुतो हन्यान्मुखवारिजधारितः ॥
श्वसनं कसनं चापि तमिवानिलनन्दनः ॥ १४ ॥

रावणस्येति ॥ मुखवारिजधारितः मुखवारिजे वदनारविन्दमध्ये धारितः धृतः रावणस्य सुतोऽक्षः अक्षशब्देनात्र बहेडकफलं श्वसनं श्वासरोगं कसनं कासरोगं चापि हन्यात् हिंस्यात् । कः कमिव अनिलनन्दनो मारुतिः तमिव अक्षं रावणिमिव । 'कपीशमक्षहन्तारं वंदे लङ्काभयंकरम्' इत्यतिप्रसिद्धेः ॥ १४ ॥

भाषार्थः—बहेडेको मुखमें रखना श्वास और खांसीको ऐसे नष्ट कर देता है जैसे हनुमानजीने रावणके पुत्र अक्षको नष्ट कर दिया था । बहेडेको अग्निपर भूनकर उसकी गुठली दूर कर दें और छिलकेको मुखमें डालकर रस चूसता रहै ॥ १४ ॥

अयि प्राणप्रिये जातिफललोहितलोचने ॥ शुण्ठिभाङ्गींकृतः क्राथः कसनश्वसनाहिराट् ॥ १५ ॥ अस्ति प्राणपते मम प्रियतमा कन्दर्पलीला सखी कासक्लेशवशादतीव कृशतां प्राप्तास्ति सा साम्प्रतम् ॥ तस्यास्त्वं कथयोपचारमधुना क्षौद्रान्वितं दीयतां विश्वग्रन्थिकणाकलिद्रुमभवं चूर्णं चकोरेक्षणे ॥ १६ ॥

अयीति ॥ अयीति मृदुसंलापे । भो प्राणप्रिये प्राणात् हन्मारुतात् प्रिया प्रीतिविषया तत्सम्बोधने । हे जातिफललोहितलोचने जातेः कम्पिल्लवृक्षस्य फलं सस्यं तद्वत् लोहिते रक्तवर्णे नेत्रे यस्याः तत्सम्बोधने । 'जातिः सामान्यगोत्रयोः । मालत्यामामलक्यां च चुल्ल्यां काम्पिल्लजन्मनोः । जाती फले छन्दसि च' इति हेमचन्द्रः । शुण्ठीभार्ङ्गीकृतः क्राथः शुण्ठीभार्ङ्गीभ्यां प्रसिद्धाभ्यां रचितः कषायः पीतः सन् स कसनश्वसनाहिराट् कसनं कासः श्वसनं श्वासरोगः तयोरहिराट् सर्पराजो भवतीति शेषः ॥ १५ ॥ १६ ॥

भाषार्थः—हे रक्तनेत्रे प्राणप्रिये ! सोंठ और भाडंगीकी जडका क्राथ खांसी और श्वासको दूर करनेके लिये सर्पराजके समान है ॥ १५ ॥ रत्नकला पूछती है कि हे प्राणपते ! कंदर्पलीला नामकी एक मेरी बडी प्यारी सखी है वह खांसीके दुःखसे आजकल

बडी कृश होती जाती है उसके लिये कुछ उपाय बताइये. यह सुन लोलिंबराज बोले कि, हे चकोरनेत्रे! सोंठ, पीपलामूल, पीपल और बहेडा इनके चूर्णको शहतमें मिलाकर चाटै ॥ १६ ॥

संयुक्तो गुडसर्पिर्भ्यां चूर्णस्त्रिकटुसंभवः ॥ निहन्ति तरसा श्वासं त्रासानिव सतां हरिः ॥ १७ ॥

संयुक्तइति ॥ त्रिकटुजनितः त्र्यूषणजनितश्चूर्णो गुडसर्पिर्भ्यां संयुक्तः कर्तव्यः स भक्षितः सन् तरसा झटिति श्वासं श्वासरोगं निहन्ति । तत्र दृष्टान्तः हरिर्नारायणः सतां नित्यानित्यवस्तुविवेकसाधनसम्पन्नानां मुमुक्षूणां साधूनां त्रासान् मृषाज्ञानजनितान् संसारहेतून् दरानिव ॥ १७ ॥

भाषार्थः—त्रिकुटाके चूर्णको गुड और घीके साथ मिलाकर सेवनकरनेसे श्वासरोग शीघ्र नष्ट होजाताहै ॥ १७ ॥

कासश्वास प्रतीकारान्तरमाह—

शृङ्गवेररसो येन मधुना सह सेवितः ॥
श्वासकासभयं तस्य न कदाचित्कृशोदरि ॥ १८ ॥

शृङ्गवेररस इति ॥ मधुनासह माक्षिकेण सार्धं शृङ्गवेररसः शृङ्गमिव वेरं शरीरमस्येति शृङ्गवेरमार्द्रकं तस्य रसो जलं स येन मनुजेन सेवितः उपभुक्तः । भो कृशोदरि हे तनुमध्ये! तस्य मानवस्य श्वासकासयोर्भयं कदाचित् कस्मिंश्चिदपि काले न भवतीति शेषः ॥ १८ ॥

भाषार्थः—हे कृशोदरि! जिसने अदरखके रसमें शहत मिलाकर पियाहै उसको श्वास और खांसीका भय कभी नहीं होताहै ॥ १८ ॥

कषायान्तरमाह—

पुलोमजावल्लभसूनुपत्नीतातात्मभूशेखरवाहनस्य ॥
सौन्दर्यदूरीकृतरामरामे कषायकैः काससमीरसर्पः ॥ १९ ॥ अयि तालफलस्तनि रत्नकले वृषवारि पिबे-

न्मधुमत्कसने ॥ न वदामि कदापि बुधाधिपतेरिदमौषधमौषधिनाथमुखि ॥ २० ॥

पुलोमजेत्यादिना ॥ भो सौन्दर्यदूरीकृतरामरामे सौन्दर्येण सुन्दरत्वेन दूरीकृता पदन्तरेण त्यक्ता रामस्य दाशरथेः रामा सीता यया सा तत्सम्बोधने । पुलोमजावल्लभसूनुपत्नीतातात्मभूशेखरवाहनस्य । पुलोमजा शची तस्याः वल्लभः पतिरिन्द्रः तस्य सूनुः पुत्रोऽर्जुनः तस्य पत्नी सहधर्मिणी द्रौपदी तस्याः तातो जनको द्रुपदः तस्यात्मभूः पुत्रः शिखण्डी । 'शिखण्डो बर्हचूडयोः' इति मेदिनीकारः । शिखण्डश्चूडास्यास्तीति शिखंडी सर्पः स एव शेखरः शिखाविन्यस्तमाल्यं यस्य सः शिवः तस्य वाहनं यानं वृषः वृषशब्देनात्र वासकः । 'वृषो धर्मे बलीवर्दे शृंग्यां पुंराशिभेदयोः । श्रेष्ठे स्यादुत्तरस्थश्च वासमूषिकशुक्रले । तथा वास्तुस्थानभेदे पुमानेषः प्रकीर्तितः' इति मेदिनीकोशः । यद्वा पुलोमजा इन्द्राणी । 'पुलोमजा शचीन्द्राणी' इत्यमरः । तस्य भर्ता इन्द्रः तस्य सूनुरनुजः उपेन्द्रः । 'सूनुः पुत्रेऽनुजे रवौ' इत्यमरः । तस्य पत्नी लक्ष्मीः । 'पत्नी पाणिगृहीती च' इत्यमरः । समुद्रः तस्य तातः पिता । 'तातस्तु जनकः पिता' इत्यमरः । समुद्रः तस्य आत्मभूः पुत्रः । 'आत्मजस्तनयः सूनुः सुतः पुत्रः' इत्यमरः ॥ चंद्रः स शेखरे यस्य स महादेवः तस्य वाहनं वृषः 'वृषोटरूषः सिंहास्यः' इत्यमरः वृषोऽत्र नाम्नाऽटरूषः तस्य कषायः क्वाथः काससमीरसर्पः कास एव समीरः पवनः तस्य सर्पः पवनाशनः । अत्रानुरक्तस्यापि मधुनः प्रक्षेपः कर्तव्यः तथाचारदर्शनात् ॥ १९ ॥ २० ॥

भाषार्थः–हे शोभनमुखि ! अडूसेका क्वाथ खांसीके नष्टकरनेमें ऐसाहै जैसा पवनके लिये सर्प ॥ १९ ॥ हे तालफलस्तनि ! हे चन्द्रमुखी ! हे रत्नकले ! खांसीके रोगमें अडूसेके क्वाथमें शहत मिलाकर पीना चाहिये ॥ २० ॥

फलत्रयं छिन्नरुहा सचित्रा रास्ना कृमिघ्नः सकटुत्रयं च ॥ चूर्णं समांशं सितया समेतं कासं जयेन्नात्र विचारणीयम् ॥ २१ ॥

फलत्रयमिति ॥ फलत्रयं फलानां पथ्याधात्रीविभीतानां त्रयं छिन्नरुहा अमृता । कथम्भूता छिन्नरुहा सचित्रा चित्रेण चित्रकेण सहिता रास्ना कृमिघ्नो विडङ्गः कटुत्रयं त्रिकटु एतेषां समांशं समभागं चूर्णं सितया शर्करया समेतं संयुक्तं

भक्षितं कासं जयेत् । अत्र किमपि न विचारणीयं । चूर्णाद्द्विगुणा सिता योज्या । यथोक्तं ' चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा मता' इति ॥ २१ ॥

इति कासश्वासप्रतीकारः॥

भाषार्थ–त्रिफला, गिलोय, चीता, रास्ना, वायबिडंग और त्रिकुटा इन दस औषधोंको बराबरबराबर लेकर चूर्ण बनावे और इन सबके बराबर मिश्री मिलाकर सेवन करै, यह चूर्ण खांसीको नष्ट करताहै इसमें कोई संदेह नहींहै ॥ २१ ॥

॥ इति० कासश्वासचिकित्सा ॥

अथामवातप्रतीकाराय एरण्डस्नेहयुक्तदशमूलशुण्ठीक्काथावाह—

दशमूलकषायमिश्रितं वा ललने विश्वकषायमिश्रितं वा ॥ प्रपिबेत्कटिकुक्षिबस्तिशूले ध्रुवमेरण्डजमेकमेवं तैलम् ॥ २२ ॥

दशमूलेति ॥ अस्य संप्राप्तिर्यथा–'विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्निश्चलस्य च । स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वतस्तथा । वायुना प्रेरितो ह्यामः श्लेष्मस्थानं प्रधावति । तेनात्यर्थमपक्कोऽसौ धमनीभिः प्रपद्यते । वातपित्तकफैर्भूयो दूषितः सोऽन्नजो रसः । स्रोतांस्यभिस्यन्दयति नानावर्णोऽतिपिच्छिलः । जनयत्यग्निदौर्बल्यं हृदयस्य च गौरवं । व्याधीनामाश्रयो ह्येष आमसंज्ञोऽतिदारुणः । युगपत्कुपितावेतौ त्रिकसन्धिप्रवेशकौ । स्तब्धं च कुरुते गात्रमामवातः स उच्यते ' । तस्य रूपं–'अंगमर्दोऽरुचिस्तृष्णाप्यालस्यं गौरवं ज्वरः । अपाकः शून्यताङ्गानामामवातस्य लक्षणं '। स त्रिधा–' पित्तात्सदाहरागं च सशूलं पवनात्मकं । स्तिमितं गुरुकण्डू च कफजुष्टं तमादिशेत् ' इति निदानम् । विरुद्धाहारचेष्टस्य विरुद्धाहारः क्षीरमत्स्यादिः, विरुद्धा चेष्टा भुक्त्वा व्यायामादिः तद्युक्तस्य । निश्चलस्य निर्व्यापारस्य । ' स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं च प्रकुर्वतः ' इति मिलितो हेतुः । श्लेष्मस्थानमामाशयसन्ध्यादिगतेन श्लेष्मस्थानगतेन अत्यर्थमपक्कः । पित्तस्थानगमनेन तु पक्कोभविष्यतीत्यभिप्रायः । असौ आमः धमनीभिः प्रपद्यते धमनीमार्गैश्चलति भूयो दूषितोऽतिशयेन दूषितः सोऽन्नजो रसः आमः स्रोतांस्यभिष्यन्दयाति संस्तभ्य रसवहशिरावरोधं कृत्वा स्रोतांसि गुरूणि करोति । नानावर्णः वातादिजनितवर्णभेदान्नानावर्णः । आमस्वरूपं तु– ' अजीर्णाचो

रया जातः सञ्चितो हि क्रमेण वै । आमसंज्ञां स लभते शिरोगात्ररुजाकरः ' । अजीर्णात् भुक्तादजीर्णात् । अस्य लक्षणान्तराणि गौरवभिया न लिखितानि । अस्य चिकित्सार्थं दशमूलेत्यादिः श्लोकः । हे ललने अहो कामिनि ! ललते इच्छति रन्तुम् । ईप्सायां चुरादीनां वाणिजिति पक्षे ल्युर्युज्वा । आमकृते कटिकुक्षिबस्तिशूले दशमूलकषायमिश्रितं दशमूलस्य ' बिल्वस्योनाकगम्भारीपाटलागणिकारिकाः । शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरं । उभाभ्यां पञ्चमूलाभ्यां दशमूलमुदाहृतम् ' इत्युक्तस्य कषायेण क्वाथेन मिश्रितं मिलितमथवा विश्वकषायेण शुण्ठीनिर्यासेन मिश्रितं युक्तं ध्रुवं निश्चितं एरण्डजमुरुबूकसम्भूतमेकं केवलं तैलं स्नेहमेव प्रपिबेत् । तथाहि चक्रपाणिदत्तः–' दशमूलीकषायेण पिबेद्वा नागराम्भसा । कुक्षिबस्तिकटीशूले तैलमेरण्डसम्भवम् ' इति ॥ २२ ॥

भाषार्थः–हे ललने ! जो आमबातसे कमर, कुक्षि और बस्तिस्थानमें पीडा होतीहो तौ दशमूलके काथमें अथवा सोंठके काथमें अरंडीका तेल मिलाकर पीना बहुत गुणकारक है ॥ २२ ॥

कषायान्तरमाह–

रास्नामृतानागरदेवदारुपञ्चाङ्घ्रियुग्मेन्द्रयवैः कषायः ॥
रुबूकतैलेन समन्वितोऽयं हर्ता भवेदामसमीरणस्य ॥२३॥

रास्नेति ॥ रास्नादिपञ्चदशभिः कृतः कषायः रुबूकतैलेन समन्वितः एरण्डस्नेहेन सह सेवितः आमसमीरणस्यामवातस्य हर्ता नाशको भवेत् । रास्नादयः उक्तार्थाः ॥ २३ ॥

भाषार्थः–रास्ना, गिलोय, सोंठ, देवदारु दशमूल और इन्द्रजौ इनके काथमें अरंडीका तेल मिलाकर पीवै तौ आमबात नष्ट होजाताहै ॥ २३ ॥

विश्वगुडूच्योः क्वाथमाह—

विलासिनी विलासेन विलासिहृदयं यथा ॥
तथा गुडूची विश्वेन हरेदामसमीरणम् ॥ २४॥

विलासिनीति ॥ विश्वेन शुण्ठ्या सह गुडूचीक्वाथः आमसमीरणमामवातं हरेत् । का किं केनेवेति दृष्टान्तमाह–विलासिनी विलासयुक्ता पूर्वोक्ता स्त्री विलासिनो भोगिनः कामिजनस्य चित्तं विलासेन हावभावप्रभेदेन यथा हरेत्तथेत्यर्थः । ' दाषि

मत्स्यं गुडं क्षीरं पोतकीं माषपिष्टकम् । वर्जयेदामवातार्तो दुष्टनीरमनूपजम्' ॥ २४ ॥ इत्यामवातः ॥

भाषार्थः–विलासवती स्त्री जैसे अपने हावभावक्रीडाकटाक्षोंसे विलासीपुरुषके अन्तःकरणको हरलेतीहै वैसेही गिलोय सोंठके काढेके साथ, आमवातको नष्ट करदेतीहै ॥ २४ ॥

इति आमवातचिकित्सा ॥

अथ चक्षूरोगस्य चिकित्सामाह–

सम्यक्स्विन्नाश्छगलजरसे काननोत्थाः कुलत्थाश्चैले बद्धाः परिहृततुषाः प्रौढसीमन्तिनीभिः ॥ सूक्ष्मं पिष्टाः पटुरसनिशाचूर्णपूर्णाः क्षपायां चक्षुःक्षिप्ताः सकलरुधिरं संहरन्ति त्र्यहेण ॥ २५ ॥

सम्यगिति ॥ काननोत्थाः वनोत्पन्नाः कुलत्थाः हक्प्रसादाः चैले वस्त्रे बद्धाः कीलिताः पुनश्च दोलायंत्रेण छगलजरसे अजामूत्रे सम्यक् स्विन्नाः शोभनप्रकारेण पाचिताः पुनः प्रौढसीमन्तिनीभिः निपुणस्त्रीभिः परिहृततुषाः निस्तुषीकृताः पुनस्ताभिरेव सूक्ष्मं यथा तथा पिष्टाश्चूर्णीकृताः पुनश्च पटुरसनिशाचूर्णपूर्णाः पटु लवणं सैन्धवं । 'लवणं नेत्रयोर्द्वेषि प्रायशः सैन्धवं विना' इत्युक्तेः । रसो गन्धरसः । बोलमितियावत् । निशा हरिद्रा एतासां चूर्णेन रजसा पूर्णाः पूरिताः युक्ताः कार्याः। ते च चतुरमहिलया क्षपायां चक्षुःक्षिप्ताः नेत्रन्यस्ताः त्र्यहेण दिवसत्रयेण सकलरुधिरं समस्तरक्तकृताभिष्यन्दं संहरन्ति नाशयन्ति ॥ २५ ॥

भाषार्थः–बनकुलथीको उत्तम स्वच्छ वस्त्रकी पोटलीमें बांधकर उस पोटलीको दोलायंत्रकी विधिसे अधर लटका कर बकरीके मूत्रमें अच्छी भांतिसे उबालै उबालनेके पीछे उसके छिलके दूर करके खूब बारीक पीस डालै फिर सेंधानमक, बोल, हलदी इन तीनोंको महीन पीसकर उक्त पिठीमें मिलाकर रात्रिके समय नेत्रोंमें आंजै, इसी प्रकार तीन दिन लगानेसे नेत्रोंके सब प्रकारके रुधिरविकार दूर हो जाते हैं ॥ २५ ॥

काचित्सखी सखींप्रत्याह—

लोलिम्बराजकविना वनितावतंसे शिग्रोरमुष्य कथितोऽस्ति किमुपयोगः ॥ एतस्य पल्लवरसात्समधोः किमन्यत् दृग्व्याधिमात्रहरणे महिलाग्रगण्ये ॥ २६ ॥
जयति मारुतपित्तकफैः कृतां बहुविधामपि लोचनयोर्व्यथाम् ॥ नयनयोर्विहितो मधुनान्वितो बहलपल्लवपल्लवजो रसः ॥ २७ ॥

लोलिम्बराजेति ॥ हे वनितावतंसे वनितानां शिरोभूषणे ! लोलिम्बराजकविना ग्रन्थकर्त्रा अमुष्य शिग्रोः सौभाञ्जनस्य किमु किमर्थमुपयोग आचरणं कथितोऽभिहितोऽस्तीति चेदिति शेषः । अन्या सखी तदुत्तरं दत्तवती । हे महिलाग्रगण्ये महिलासु यौवनमदमत्तासु वामासु अग्रे पुरस्तात्प्राधान्येन गणयितुं योग्ये दृग्व्याधिमात्रहरणे दृशोर्व्याधिर्नेत्रयोः रोगः तन्मात्रस्य हरणे नाशकरणे एतस्य शिग्रोः पल्लवरसात् पत्रस्वरसात् समधोर्माक्षिकयुक्तात् अन्यत् भेषजांतरं किमस्ति । नास्तीत्यर्थः ॥२६॥२७॥

भाषार्थः—एक सखी अपनी सहेलीसे पूछती है कि हे वनिताशिरोभूषणे ! लोलिम्बराज कविने सहजनेका उपयोग किस लिये कहा है ? तब वह सहेली उत्तर देती है कि, हे महिलाग्रगण्ये ! नेत्ररोगोंके दूर करनेके लिये इससे अच्छी कोई औषध नहीं है कि सहजनेके पत्तोंके रसमें शहत मिलाकर नेत्रोंमें आंजै ॥ २६ ॥ नेत्रोंमें कफ वात वा पित्तकी कैसीही व्याधि क्यों न हो सहजनेके रसमें शहत मिलाकर लगानेसे जाती रहती है ॥ २७ ॥

कुवलयनयनेऽर्जुनं कफोऽब्धेः सह सितयाशु निराचरीकरोति ॥ प्रियकरमिव कामिनी नवोढा लघुकुचशालिनि वक्षसि प्रयुक्तम् ॥ २८ ॥

कुवलयनयने इति ॥ हे कुवलयनयने कुवलयमिन्दीवरं तद्दलवन्नीले नयने नेत्रे यस्याः तत्सम्बोधने । सितया सह अब्धेः कफो डिण्डीरः फेन इत्यर्थः । अर्जुनं

चक्षूरोगविशेषं । तथोक्तं–'एको यः शशरुधिरोपमस्तु बिन्दुः शुक्लस्थो भवति तदर्जुनं वदन्ति ' इति । तमाशु त्वरितं निराचरीकरोति दूरीकरोति । तत्र दृष्टान्तः का कमिव नवोढा नववधूर्नूतनाविवाहिता कामिनी मनसातिशयकामवती लघुकुचशालिनि लघु ह्रस्वौ यौ कुचौ स्तनौ ताभ्यां शोभायमाने वक्षसि उरसि प्रियकरमिव प्रियस्य पत्युः करं हस्तं यथा दूरीकरोति तथेत्यर्थः ॥ २८ ॥

भाषार्थः–हे कमलनयने! समुद्रफेन और सफेद मिश्रीका चूर्ण महीन पीसकर नेत्रोंमें लगाना अर्जुनरोगको ऐसे दूर कर देता है जैसे नव विवाहिता स्त्री छोटे छोटे कुचोंवाली अपनी छाती पर लगाये हुए अपने पतिके हाथको हटा देती है. आंखकी सफेदीपर जो खरगोशके रुधिरके समान लाल छींटेसे हो जाते है उन्हें अर्जुनरोग कहते हैं ॥ २८ ॥

इति निगदितमार्ये नेत्ररोगातुराणां निशि समधुघृताग्र्या सेव्यमाना सुखाय ॥ अयि नवशिशुलीलालोलदृष्टे त्वमग्र्या जनयसि बत कस्माद्वैपरीत्यं परं तु ॥ २९ ॥

इतीति ॥ हे आर्ये ! हे सत्कुलजे ! नेत्ररोगातुराणां सम्बन्धे समधुघृताग्र्या मधुघृताभ्यां माक्षिकगव्याज्याभ्यां सहिता अग्र्या त्रिफला निशि रात्रौ सेव्यमाना कृतसेवना भक्षिता सती सुखाय शर्मणे भवतीति निगदितं वैद्यैरिति शेषः । ' त्रिफला मधुसर्पिर्भ्यां निशि नेत्रबलाय च ' इति वाग्भटः । अयीत्यभिमुखीकरोति–हे नवशिशुलीलालोलदृष्टे नवो नव्यो यः शिशुः शावकोऽतिबालकः तस्य या लीला करचरणादिचालनस्वरूपा केलिस्तद्वल्लोला अस्थिरा दृष्टिर्लोचनं यस्यास्तत्सम्बोधने। त्वमपि अग्र्या श्रेष्ठा परन्तु बत इति खेदे नेत्ररोगातुराणां निशि कस्मात् हेतोर्वैपरीत्यं विपरीतभावं जनयसि यतो नेत्ररोगिणो मैथुनं सर्वथा निषिद्धं । मधुघृताभ्यामित्यत्र मधुनो मद्यस्याप्यनिष्टकरत्वाद्वैपरीत्यम् ॥ २९ ॥

भाषार्थः–हे आर्ये ! बडे बडे आचार्योंने कहाहै कि त्रिफलाके चूर्णमें शहत और घी मिलाकर रात्रिमें सेवन करै तो सब प्रका-

रके नेत्ररोग दूर होजातेहैं, और हे चंचलनयने ! तूभी तौ श्रेष्ठ है बडे खेदकी बात है कि तू श्रेष्ठ होकर रात्रिमें विपरीत भाव उत्पन्न करतीहै अर्थात् स्त्रीसंगम नेत्ररोगको बढाताहै ॥ २९ ॥

रात्र्यंधतोपायमाह—

निराकरोति नक्तान्ध्यं सगोमयरसा कणा ॥
यथा रतेन रमणी रमणस्य महाबलम् ॥ ३० ॥

निराकरोतीति ॥ सगोमयरसा कणा गोमयरसेन सह घृष्टा पिप्पली नक्तान्ध्यं रात्र्यन्धतां निराकरोति दूरीकरोति । तत्रोदाहरणं यथेति । यथा रमणी रमयति नरमिति रमणी विशेषाङ्गना रतेन सुरतेन रमणस्य रमयति कामिनीमिति रमणः पतिस्तस्य महाबलं महत्सामर्थ्यं निराकरोति तथेत्यर्थः ॥ ३० ॥

भाषार्थः–गौके गोवरमें पीपल घिसकर आंखोंमें आंजनेसे रतोंध ऐसे दूर होजातीहै जैसे रमण करनेसे पुरुषका बल क्षीण होजाताहै ॥ ३० ॥

श्यामेऽश्यामे प्रियश्यामे श्यामाबोधितमानसे ॥
शुक्रं शमयति क्षिप्रं माक्षिकं माक्षिकान्वितम् ॥ ३१ ॥

श्यामे इति ॥ हे श्यामे ! षोडशवर्षवयस्के अप्रसूताङ्गना श्यामा तत्सम्बोधने । पुनः हे अश्यामे श्यामो वर्णो यस्याः सा श्यामा न श्यामा अश्यामा गौरवर्णा तत्सम्बोधने। पुनश्च हे प्रियश्यामे प्रियो भर्ता श्यामो वर्णतः कृष्णोयस्याः यद्वा प्रिया हृद्या हृत्प्रिया श्यामा कालिका यस्याः तत्सम्बोधने । हे श्यामाबोधितमानसे श्यामा अप्रसूताङ्गना षोडशवार्षिकी सखी तया बोधितं सम्यक् ज्ञापितं मानसं मनो यस्याः तत्सम्बोधने । माक्षिकान्वितं मधुयुक्तं माक्षिकं स्वर्णमाक्षिकं घृष्ट्वा नेत्रे न्यस्तं सत् शुक्रं शुक्राभिधं तारकापिण्डिकानिभं नेत्ररोगं क्षिप्रमरं शमयति नाशयति । इति नेत्ररोगप्रतीकारः ॥ ३१ ॥

भाषार्थः–हे श्यामे ! हे गौराङ्गि ! हे प्रियश्यामे ! हे श्यामाबोधितमानसे ! सोनामक्खीको शहतमें घिसकर लगानेसे आंखका फूला शीघ्र जाता रहताहै ॥ ३१ ॥

अथ कामलाप्रतीकारमाह—

त्रिफलावृषभूनिम्बनिम्बातिक्तामृताकृतः ॥
क्वाथो मधुयुतः पीतः कामलापाण्डुरोगजित् ॥ ३२ ॥

त्रिफलेति ॥ तत्र पाण्डुरोगभेदस्य कामलायाः निदानपूर्विकां सम्प्राप्तिमाह भावामिश्रः स्वप्रकाशे—'पाण्डुरोगी तु योत्यर्थं पित्तलानि निषेवते । तस्य पित्तमसृङ्मांसं दग्ध्वा रोगाय कल्पते' । पित्तं कर्तृ दग्ध्वा सन्दूष्य रोगाय कामलारूपाय पाण्डुरोगिण एवातिशयितं पित्तलसेवया कामला भवतीति नायं नियमः किन्तु कामला स्वतन्त्रापि भवति । यथा राजयक्ष्मा कासादुपेक्षिताद्भवति नायं नियमः किन्तु राजयक्ष्मा स्वतन्त्रोपि भवति तद्वदेषापि । कामलाया लक्षणमप्याह स एव—' हारिद्रनेत्रः सुभृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः । पीतवर्णशकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेन्द्रियः । दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः' । हारिद्रं हरिद्रावर्णं पीतरक्तशकृन्मूत्रः पीते रक्ते वा शकृन्मूत्रे यस्य सः भेकवर्णः बृहद्भेकवर्ण इति त्रिफलाद्यष्टद्रव्यैः कृतो रचितः क्वाथः कषायः मधुयुतो माक्षिकसहितः पीतः सन् कामलापाण्डुरोगजित् कामलाकृतो यः पांडुरोगः तस्य नाशको भवति । यद्वा कामलारोगं पाण्डुरोगं च जयतीत्यर्थः । यथाह चक्रपाणिदत्तः—'फलत्रिकामृतावांसातिक्ताभूनिम्बनिम्बजः । क्वाथः क्षौद्रयुतो हन्यात्पाण्डुरोगं सकामलम्' इति ॥ ३२ ॥

भाषार्थः—त्रिफला, अडूसा, चिरायता, नीमकी छाल, कुटकी और गिलोय इनका क्वाथ शहत मिलाकर पीनेसे कामला और पांडुरोगको दूर करदेताहै ॥ ३२ ॥

देवदालीफलरसो नस्यतो हन्ति कामलाम् ॥
सन्देहो नात्र संफुल्लनीलोत्पलविलोचने ॥ ३३ ॥

देवदालीति ॥ देवदालीफलरसः देवदाल्याः कण्टफलायाः फलं तस्य रसो वस्त्रनिष्पीडितजलं स नस्यतः नासिकायां प्रदानात् कामलां स्वनाम्ना ख्यातं रोगं हन्ति नाशयति । हे सम्फुल्लनीलोत्पलविलोचने सम्फुल्लं विकसितं यन्नीलोत्पलमिन्दीवरं तद्वद्विलोचने नेत्रे यस्याः तत्सम्बोधने अत्रास्मिन्नुपचारे सन्देहो वापरस्त्वया न कार्य इति शेषः ॥ ३३ ॥

भाषार्थः-बन्दालके फलका रस सूंघनेसे कामला रोग जाता-रहताहै· हे विकसितनीलकमलनयने ! इसमें कोई संदेह नही है ॥ ३३ ॥

अत्राञ्जनमाह-

गिरिभृद्रात्रिधात्रीणामंजनं कामलापहम् ॥

इदं नहि भवेन्मिथ्या शपथस्तु तवाङ्गने ॥ ३४ ॥

गिरिभृदिति ॥ गिरिभृत् गैरिकं, रात्रिर्हरिद्रा, धात्री आमलकी, एषां चूर्णस्य अञ्जनं कामलापहं भवति । हे अङ्गने इदमञ्जनं मिथ्या नैव भवेदत्र तव शपथः शपनं । मया क्रियत इति शेषः॥ ३४ ॥

भाषार्थः-हे अंगने ! गेरू, हलदी और आंवला इनको महीन पीसकर आंखोंमें लगानेसे कामलारोग जाता रहताहै, में तेरी शपथ खाकर कहताहूं यह प्रयोग बहुत सच्चा है ॥ ३४ ॥

अये मनोज्ञकुण्डले स्फुरन्मुखेन्दुमण्डले ॥

गवां पयः सनागरं निहन्ति कामलाभरम् ॥ ३५ ॥

अयेइति ॥ अये मनोज्ञकुण्डले मनोज्ञे शोभने कुण्डले कर्णवेष्टने यस्याः तत्सम्बोधने। हे स्फुरन्मुखेन्दुमण्डले इन्दोर्मण्डलं बहिर्वेष्टनं मुखमिन्दुमण्डलमिवेति मुखेन्दुमण्डलं स्फुरद्दीप्यमानं मुखेन्दुमण्डलं यस्याः तत्सम्बोधने गवां पयो गोदुग्धं शुण्ठ्या सह पीतं सत् कामलाभरं कामलातिशयं निहन्ति ॥ ३५ ॥ इति कामलाप्रतीकारः ॥

भाषार्थः-हे मनोज्ञकुंडले ! हे पूर्णचन्द्रानने ! गौके दूधमें सोंठ मिलाकर पीनेसे कामलारोग नष्ट होजाताहै ॥ ३५ ॥

इति पाण्डुकामलारोगचिकित्सा ॥

अथ योनिशूलप्रतीकारमाह-

पिचुमन्दरसेन मिश्रितैः पिचुमन्दानिलशत्रुबीजकैः

घटितां वटिकां भगान्तरे भगशूलप्रशमाय धार-येत् ॥ ३६ ॥

पिचुमंदरसेनेति ॥ पिचुमन्दो निम्बः, अनिलशत्रुः एरण्डः तयोः पिष्टैर्बीजकैर्बीजैः पिचुमन्दरसेन मिश्रितैः पिचुमन्दस्य निम्बस्य रसेन स्वरसेन मिश्रितैः संमर्द्य एकीकृतैस्तैर्घटितां रचितां वटिकां गुटिकां भगशूलप्रशमाय भगे जन्मवर्त्मनि शूलो रोगविशेषस्तस्य प्रशमाय नाशाय भवति। भगान्तरे संसारमार्गस्यान्तर्धारयेत् ॥ ३६ ॥

भाषार्थः–निबौली और अरंडके बीजोंको महीन पीसकर नीमके पत्तोंके रसमें गोली बनाकर योनिके भीतर रक्खै तौ योनिशूल जाता रहताहै ॥ ३६ ॥

तरुण्युत्तरणीमूलं छागीसर्पिः सनागरम् ॥
शिवशस्त्राभिधां बाधां योनिस्थां हन्ति सत्वरम् ॥ ३७ ॥

तरुणीति ॥ हे तरुणि हे युवति ! उत्तरणीमूलमिन्द्रवारुणीमूलं सनागरं शुण्ठ्या सह अजाज्येन युक्तं कार्यं तस्य लेपात् योनिस्थां शिवशस्त्राभिधां शिवस्य शस्त्रं शूलं तदेव अभिधा नाम यस्याः सा तां व्यथां बाधां सत्वरं तूर्णं हन्ति नाशयति ॥ ३७ ॥

भाषार्थः–हे तरुणि ! इन्द्रायणकी जड और सोंठको महीन कर बकरीके घृतमें मिला योनिमें लेप करनेसे योनिशूलको दूर करदेताहै ॥ ३७ ॥

अथ प्रसूतानां योषितां स्तन्यशोधनाय कषायमाह–

गोपीवृकीदारुकिरातमूर्वातिक्तामृताविश्वघनेंद्रजानाम् ॥
क्वाथोऽयमुक्तो मृगलोचनानां दुष्टस्य दुग्धस्य विशोधनाय ॥ ३८ ॥

गोपीति ॥ गोपी शारिवा, वृकी पाठा, दारु देवदारु, किरातो भूनिंबः, मूर्वा पीलुपर्णीलता, तिक्ता कटुकी, अमृता गुडूची, विश्वं शुण्ठी, घनो मुस्तकः, इन्द्रजः इन्द्रयवः एतासामौषधीनामयं क्वाथो मृगलोचनानामेणीनयनानां दुष्टस्य दोषयुक्तस्य दुग्धस्य बालजीवनस्य विशोधनाय निर्दोषीकरणाय उक्तोऽभिहितः ॥ ३८ ॥

भाषार्थः–शारिवा, पाठा, देवदारु, चिरायता, मरोड़फली, कुटकी, गिलोय, सोंठ, नागरमोथा, इन्द्रजौ इनका क्वाथ उन स्त्रियोंको पिलावै जिनके स्तनोंका दूध बिगड़ गया हो ॥ ३८ ॥

अथ प्रदरप्रतीकारमाह–

कटंकटेरीरसजाब्दवासाभूनिम्बभल्लीतिलजः कषायः ॥ क्षौद्रान्वितश्चञ्चललोचनानां नानाविधानि प्रदराणि हन्यात् ॥ ३९ ॥

कटंकटेरीति ॥ कटंकटेरी दारुहरिद्रा, रसजं रसाञ्जनं, अब्दो मुस्तकः, वासा आटरूषः, भूनिम्बश्चिरातिक्तः, भल्ली भल्लातकः, तिलो होमधान्यं, कटंकटेर्यादिभ्यः उत्पन्नः कषायः क्वाथः क्षौद्रान्वितो माक्षिकयुक्तः पीतः सन् चञ्चललोचनानां तरलेक्षणानां नारीणां नानाविधानि चतुःप्रकाराणि प्रदराणि हन्यात् । चातुर्विध्यमुक्तं भावमिश्रेण स्वप्रकाशे–'तं श्लेष्मपित्तानिलसन्निपातैश्चतुःप्रकारं प्रवदन्ति वृद्धाः' इति ॥ ३९ ॥

भाषार्थः–दारुहलदी, रसौत, नागरमोथा, अडूसा, चिरायता, भिलावा और तिल इनके काथमें शहत डालकर पिलानेसे स्त्रियोंके सब प्रकारके प्रदररोग जाते रहते हैं ॥ ३९ ॥

कुवलयदलनेत्रे तन्दुलीयस्य मूलं रसजमपि समांशं भेषजद्वन्द्वमेतत् ॥ हिमकरमुखि युक्तं तन्दुलाम्भोमधुभ्यां प्रदरदरमुदीर्णं सुन्दरीणां निहन्ति ॥४०॥
अयि सरोरुहसोदरलोचने रसजतण्डुलकाङ्क्षिभवं रजः॥ समधुतण्डुलवारि निवारयेन्मृगदृशां प्रचुरं प्रदरं द्रुतम् ॥ ४१ ॥

कुवलयदलनेत्रे इति ॥ हे कुवलयदलनेत्रे कुवलयस्येन्दीवरस्य दलं पत्रं तद्वन्नेत्रे यस्याः तत्सम्बोधने ! हे हिमकरमुखि हिमाः शीतलाः कराः किरणा यस्यैतादृशो हिमांशुः तद्वन्मुखमास्यं यस्याः तत्सम्बोधने । तन्दुलीयस्य अल्पमारिषस्य मूलं बुध्नः रसजमपि रसाञ्जनं च एतद्द्वन्द्वं मिथुनं समांशं तुल्यभागं भेषजमौषधं तण्डुलाम्भोमधुभ्यां तण्डुलानां धान्यसाराणां क्षालितजलं मधु माक्षिकं च ताभ्यां युक्तं पीतं सत् सुन्दरीणां स्त्रीणामुदीर्णं महत्तरं प्रदरदरं प्रदरस्यासृग्दरस्य दरं साध्वसं नि-

हन्ति । तदुक्तं भावप्रकाशे–'रसाञ्जनं तन्दुलकस्य मूलं क्षौद्रान्वितं तन्दुलतोयपीतम्। असृग्दरं सर्वभवं निहन्ति' इति ॥ ४० ॥ ४१ ॥

भाषार्थः–हे कमलदलनेत्रे ! हे चन्द्रानने ! चौलाईकी जड़ और रसौतको बराबरले पीसकर चूर्ण बनावै। इसका चांवलोंके पानी और शहतके साथ सेवन करनेसे प्रदररोग नष्ट होजाताहै ॥ ४० ॥ हे कमलनयनी! रसौत और चौलाईकी जड़का चूर्ण चांवलोंके पानी और शहतके साथ पीनेसे प्रदररोगको नष्ट करताहै ॥ ४१ ॥

अथ स्त्रीणां रजःप्रवृत्त्यवरोधस्य कुलटानां भ्रूणपातनस्य चोपायमाह—

मूलं गवाक्ष्याः स्मरमंदिरस्थं पुष्पावरोधस्य वधं करोति ॥ अभर्तृकाणां व्यभिचारिणीनां योगोयमेवं द्रुतगर्भपाते ॥ ४२ ॥

मूलमिति ॥ स्मरमन्दिरस्थमुपस्थे स्थापितं गवाक्ष्याः विशालायाः मूलं बुध्नः पुष्पावरोधस्य रजसतिरोधानस्य वधं करोति पुष्पप्रदं भवतीत्यर्थः । पुनः अभर्तृकाणां विश्वस्तानां व्यभिचारिणीनां कुलटानां च द्रुतगर्भपाते शीघ्रं भ्रूणस्याधःपातने चायमेव योग उपायोस्तीति शेषः । अभर्तृकपदात्कुमारीप्रोषितपतिकयोरपि ग्रहणम् ॥ ४२ ॥

भाषार्थः–इन्द्रायणकीजड़ योनिमें रखनेसे रजोधर्मकी प्रवृत्ति होतीहै। पतिहीना व्यभिचारिणी स्त्रियोंके लिये यह प्रयोग उत्तम है ॥ ४२ ॥

अथैकेन श्लोकेनान्तर्वत्न्याः सुखप्रसववमनयोर्भेषजमाह––

मध्वाज्ययष्टीमधुलुङ्गमूलं निपीय सूते सुमुखि सुखेन ॥ सुतण्डुलाम्भःसितधान्यकल्कपानाद्वमिर्गच्छति गर्भिणीनाम् ॥ ४३ ॥

मध्वाज्येति ॥ सुमुखी शोभनं मुखं यस्याः सा । स्वाङ्गादिति ङीप् । मधु माक्षिकं, आज्यं सर्पिः, यष्टीमधु यष्टिः, लुङ्गमूलं बीजपूरस्य जटा एतेषां कल्कं कृत्वा तं निपीय पीत्वा च गर्भिणी सुखेन अक्लेशेन सूते प्रसूते । यथाह चक्रपाणिदत्तः–'मातुलिङ्गस्य मूलानि मधुकं मधुसंयुतं । घृतेन सह पातव्यं सुखं नारी प्रसूयते,' इति । सुखप्रसवमन्त्रोऽपि पठनीयः । स यथा–'अस्ति गोदावरीतीरे जम्भला नाम राक्षसी । तस्याः स्मरणमात्रेण विशल्या गर्भिणी भवेत्' इति । अत्र मध्वाज्ये विषमे ग्राह्ये अन्यत् समं । अथ गर्भिणीनां सुतण्डुलांभसितधान्यकल्कपानात् शोभनतण्डुलजलेन सह सितधान्ययोः शर्कराधान्याकयोः कल्कस्य पानात् पीतैः वमिर्वान्तिर्गच्छति ॥ ४३ ॥

भाषार्थः–गर्भिणी स्त्रीको शहत, घी, मुलहटी और बिजौरेकी जड़ पान करावै तौ बालक सुखपूर्वक उत्पन्न होवै, जो गर्भवती स्त्रीको बमन होतीहो तौ चांवलोंके धोवनमें मिश्री और धनियां पीसकर मिलावै, इसके पीनेसे वमन दूर हो जातीहै ॥ ४३ ॥

धान्याब्दाम्बुद्वयारल्वमृतविषबलारेणुदुस्पर्शशीतं गर्भिण्याः[२] सूतिकाया[४] अपि[३] रुधिररुगामातिसारज्वरघ्नम्[१] ॥ मुस्ताशृङ्गीविषाणां प्रशमयति रजः[२] सेवितं[४] क्षौद्रयुक्तं[३] बालानां वान्तिकासज्वरमतिविषजं[६] क्षौद्रयुक्तं[११] रजो[१०] वा[९] ॥ ४४ ॥

धान्याब्देति ॥ धान्या धान्याकं, अब्दो मुस्ता, अम्बुद्वयमुशीर-ह्रीबेरं, अरलुः स्योनाकः, अमृता गुडूची, विषा अतिविषा, बला, वाट्यालका, रेणुः पर्पटः, दुःस्पर्शो यवासः, शीतं चन्दनं, एतेषां समाहारेण कृतं क्वथितं जलं गर्भिण्याः स्त्रियः पुनः सूतिकायाः नवप्रसूताया अपि योषाया रुधिररुगामातिसारज्वरघ्नं रुधिररुक् च रक्तामातिसारश्च ज्वरश्च तान् हन्त्येतादृशं । एतदुक्तं चक्रपाणिदत्तमिश्रेण–'ह्रीबेरारलुरक्तचन्दनबलाधान्याकवत्सादनी मुस्तोशीरयवासपर्पटविषाक्वाथं पिबेद्गर्भिणी । नानावर्णरुजातिसारकगदे गर्भाश्रिते वा ज्वरे रोगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितः सूत्यामयेषूत्तमः ' इति । मुस्ताशृङ्गीविषाणां चूर्णीकृतानां रजः चूर्णं क्षौद्रयुतं मधुसहितमवलेहतया सेवितं सत् बालानां स्तनन्धयानां वान्तिकासज्वरं प्रशमयति । वा पक्षान्तरे क्षौद्रयुक्तमिति विषजं रजः प्रतिविषाचूर्णं सेवितं तादृशं

भवति । भावमिश्रस्तु—' घनकृष्णारुणाशृङ्गीचूर्णं क्षौद्रेण संयुतम् । शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं कासं श्वासं वमिं हरेत् ।' अरुणा अतिविषा चतुर्भद्रिका ज्वरातिसारेष्विति विशेषमाह ॥ ४४ ॥

भाषार्थः—धनियां, नागरमोथा, नेत्रवाला, खस, स्योनाक, गिलोय, अतीस, खरैटी, पितपापड़ा, जवासा और रक्तचन्दन इन ग्यारह द्रव्योंका क्वाथ उस स्त्रीके रुधिरविकार, आमातिसार, और ज्वर को नष्ट कर देताहै जो गर्भवती हो अथवा जिसके अभी बालक उत्पन्न हुआहो ॥ और जिन बालकोंको बमन, खांसी और ज्वर हो उनको नागरमोथा, काकड़ासिंगी और अतीस इनके चूर्णको शहतमें मिलाकर चटावै अथवा केवल अतीसके चूर्णकोही शहत मिलाकर चटावै ॥ ४४ ॥

शिशोरतिसारे क्वाथमाह—

कुमारातिसारे कषायः समङ्गामदाशारिवारोध्रजः क्षौद्रयुक्तः ॥ मदारोध्रबिल्वाब्दमञ्जिष्ठवालाकषायोऽवलेहोऽथवा क्षौद्रयुक्तः ॥ ४५ ॥

॥ इति श्रीदिवाकरसूनुलोलिम्बराजविरचिते तृतीयो विलासः ॥

कुमारातिसार इति ॥ समङ्गा मञ्जिष्ठा, मदा धातकी, शारिवा गोपी, रोध्रः लोध्रं, एषां चतुर्णां कषायः क्वाथः क्षौद्रयुक्तो माक्षिकमिश्रितः कुमारातिसारे देयः । उक्तं च —'समङ्गाधातकीलोध्रशारिवाभिः शृतं जलम् । दुर्धरेऽपि शिशोर्देयमतिसारे समाक्षिकम्' इति । अपि च मदा धातकी, रोध्रो लोध्रः, बिल्वं बिल्वफलमामम्, अब्दो मुस्ता, मञ्जिष्ठा समङ्गा, बाला ह्रीबेरं, मदादीनां कषायः, अथवा एषामवलेहः क्षौद्रेण युक्तः कषायोवलेहो वा कुमारस्यातिसारे हितोऽभिहितः । प्रसङ्गादत्र बालरोगाणां ग्रन्थान्तरोपलब्धं निदानादिकं लिख्यते—'धात्र्यास्तु गुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषजैस्तथा । दोषा देहे प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति ॥ १ ॥ मिथ्याहारावहारिण्या दुष्टा वातादयः स्त्रियः । दूषयन्ति पयस्तेन जायन्ते व्याधयः शिशोः ॥ २ ॥ वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन् वातगदातुरः । क्षामस्वरः कृशाङ्गः स्याद्बद्धविण्मूत्रमारुतः ॥ ३ ॥ स्विन्नो भिन्नमलो वातः कामला-

पित्तरोगवान्। तृष्णालुरुष्णसर्वाङ्गः पित्तदुष्टं पयः पिबन्॥ ३॥ श्लेष्मदुष्टं पिबन् क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान्। निद्रार्दितो जडः शूनः वक्राक्षश्छर्दनः शिशुः॥ ४॥ ज्वराद्या व्याधयः सर्वे कथिता महतां तु ये। बालानामपि ते तद्वद्बोद्धव्या भिषगुत्तमैः॥ ५॥' इति॥ ४५॥

इति श्रीकुलावधूतश्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्धरिहरानन्दनाथभारती-शिष्यब्रह्मावधूतश्रीसुखानन्दनाथविरचितायां सुखानन्द्यां लोलिम्ब-दीपिकायां तृतीयविलासस्य प्रकाशार्थः॥ ३॥

भाषार्थः—जो बालकके अतीसार रोग हो गयाहो तौ मजीठ, धायके फूल, शारिवा और लोध इनके काढ़ेमें शहत मिलाकर पान करावै, अथवा धायके फूल, लोध, बेलगिरी, नागरमोथा, मजीठ और सुगंधवाला इनके क्वाथमें अथवा चटनीमें शहत मिलाकर देवै॥ ४५॥

इति तृतीयविलासस्य भाषा समाप्ता॥ ३॥

अथ चतुर्थो विलासः।

अथ क्षयादिगदानां चिकित्सां श्रोतुं रत्नकलोपक्रमते—

विद्वल्ललामलोलिम्बनृपतेर्वाग्विलासतः॥
तृप्तिर्न जायते स्वामिन्पुनः किञ्चिन्निरूपय॥ १॥

विद्वल्ललामेति॥ विदन्तीति विद्वांसः आयुर्वेदज्ञाः तेषु ललामं प्रधानमुत्तमो यो लोलिम्बनृपतिस्तस्य लोलिम्बराजस्य वाचो वाण्या विलासो लीला तस्याः श्रवणात्तृप्तिः अलंप्रत्ययः श्रवणेच्छानिवृत्तिर्न जायते अतः हे स्वामिन्! पुनः किञ्चिन्निरूपय कथय॥ १॥

भाषार्थः—हे स्वामी! आप आयुर्वेदज्ञोंमें प्रधान लोलिम्बराज है आपकी बात सुनते सुनते जी नहीं अघाता है इससे कुछ और भी कहिये॥ १॥

लोलिम्बराज आह—

क्षयोत्पत्तिविनाशाय सिंहास्यः सेव्यतां सदा ॥
बहूनामस्य विश्वासो जातः कमललोचने ॥ २ ॥

क्षयेति ॥ हे कमललोचने हे पद्मेक्षणे! क्षयोत्पत्तिविनाशाय क्षयस्य यक्ष्मणो नृपामयस्य उत्पत्तिः प्रादुर्भावस्तस्य विनाशाय अदर्शनाय सिंहास्यो वैद्यमाता सदा सेव्यतां सर्वदा सेवनीयः। सदाशब्देन अन्योपायेष्वपि वासकस्य त्यागो न कार्य इत्यभिप्रायः। उक्तं च—'वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च। रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति' इति। अस्य सेवनस्य बहुतराणां विश्वासो निश्चयो जात उत्पन्नः ॥ २ ॥

भाषार्थः—हे कमलनेत्रे! क्षयीरोगको दूर करनेके लिये अडूसे-के पत्तोंका क्वाथ सदा सेवन करै, इसपर बहुतेरे मनुष्योंका विश्वास है ॥ २ ॥

अयि सुन्दरि सुन्दरानने रुचिरापाङ्गतरङ्गलोचने ॥
नवनीतमधूपलाशनादुडुराजोऽपि भवेत्क्षयक्षयः ॥ ३ ॥

अयीति ॥ अयि सुन्दरि हे सुन्दरि हे सुन्दरानने सुन्दरं शोभनमाननं यस्यास्तत्सम्बोधने, हे रुचिरापाङ्गतरङ्गलोचने रुचिरौ शोभनौ यौ अपाङ्गौ नेत्रान्तौ तयोस्तरङ्गा लहर्यो ययोस्तादृशे लोचने नेत्रे यस्यास्तत्सम्बोधने, नवनीतमकृताग्निसंयोगं नवोद्धृतं घृतं च, मधु माक्षिकं च, उपला शर्करा च, त्रयाणामशनात् भक्षणात् उडुराजोऽपि उडुषु नक्षत्रेषु राजते। राजृ दीप्तौ क्विप्। तस्यापि नक्षत्रेशस्यापि क्षयो यक्ष्मरोगः तस्य क्षयो भवेत् नाशो भवेत् ॥ ३ ॥ इति क्षयप्रतीकारः ॥

भाषार्थः—हे सुन्दरि! हे शोभनानने! हे चंचलकटाक्षनेत्रे! मक्खन शहत और मिश्री मिलाकर सेवन करनेसे चन्द्रमाका भी क्षयरोग जाता रहता है, मनुष्योंका क्षय तौ कुछ है ही नहीं ॥ ३ ॥

अथ व्रणोपचर्यामाह—

अयि कोमलकुन्तलावलीविलसत्पल्लवमल्लिकाभरे ॥
त्रिफलाजनितः कषायकः सहितो गुग्गुलुना व्रणं जयेत् ॥ ४ ॥

अयीति ॥ अयीति मृदुलभाषणे सम्बोधनम् । हे कोमलकुन्तलावलीविलसत्पल्लवमल्लिकाभरे कोमलानां मृदुलानां कुन्तलानां बालानामावली पङ्क्तिः अलकपरम्परा वा तया विलसन्ती विलाससहिता पल्लवयुक्ता मल्लिका पुष्पविशेषजातिर्वा तस्या भर उत्कर्षो यस्यास्तत्सम्बोधने । विलसन्मालतिकामनोहरे इति पाठान्तरं वा। गुग्गुलुना सहितः कुम्भोलूखलकेन युक्तस्त्रिफलाजनितः कषायकः व्रणमीर्मं जयेत् ॥४॥

भाषार्थः—चमेलीके पुष्पोंसे ग्रथित गुलझट लिये हुए श्यामकेशोंवाली ! गूगलके साथ त्रिफलाका क्काथ पीनेसे व्रण जाता रहता है ॥ ४ ॥

अथ मेदःप्रतीकारमाह—

मदनज्वरकारिनामधेये रसिके रत्नकले प्रभातकाले॥
शिशिराम्बु पिबन्मधुप्रयुक्तं गणनाथोऽपि भवेत्किलास्थिशेषः ॥ ५ ॥

मदनज्वरेत्यादिना ॥ हे मदनज्वरकारिनामधेये मदनज्वरं कामज्वरं करोति तच्छीलं नामधेयं यस्यास्तत्सम्बोधने । हे रसिके रसो रागः स्नेहोऽस्ति अस्याः । ठन् । तत्सम्बोधने हे रत्नकले ! प्रभातकाले अहर्मुखसमये मधुप्रयुक्तं माक्षिकसहितं शिशिराम्बु सुशीतं पानीयं पिबन् । गणनाथोऽपि लम्बोदरोपि किल निश्चयेन अस्थिशेषो भवेत् । मेदसः क्षयात् । उक्तंच—'प्रातर्मधुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाशनम् ' ॥ ५ ॥ इति मेदःप्रतीकारः ॥

भाषार्थः—हे कामज्वरनामधेये ! हे रसिके रत्नकले ! प्रातःकाल शीतलजलमें शहत डालकर पीनेसे गणेशजी भी अस्थिमात्र रह जाते हैं अर्थात् जिसका पेट बहुत बढ़ जाता है वह उक्त प्रयोगका सेवन करै तौ घट जायगा ॥ ५ ॥

अथ क्रमिरोगस्य प्रतीकारमाह—

त्रिकटुत्रिफलाकलिङ्गनिम्बत्रिवृदुग्राखदिरोद्भवः कषायः॥
पशुमूत्रसमन्वितो निपीतः क्रिमिकोटीरपि हन्ति वेगतोऽयम् ॥ ६ ॥

त्रिकट्विति ॥ त्रिकटु त्र्यूषणं, त्रिफला प्रसिद्धा, कलिङ्गमिन्द्रयवं, निम्बो हिङ्गुनिर्यासः, त्रिवृत् रोचनी, उग्रा वचा, खदिरः खदिरसारः, एभ्यः उद्भवो यस्य एतादृशोऽयं कषायः क्वाथः पशुमूत्रसमान्वितो गोमूत्रसंयुक्तो निपीतः कृतपानः क्रिमिकोटीरपि बहून् क्रिमीन् । वेगतो जवेन हन्ति नाशयति । कोटिशब्दो बहूनां बोधकः ॥ ६ ॥ इति क्रिमिप्रतीकारः ॥

भाषार्थः–त्रिकुटा, त्रिफला, इन्द्रजौ, नीमकी छाल, निसोथ, बच, खैर, इनके क्वाथमें गोमूत्र डालकर पीनेसे असंख्य कीडे भी नष्ट हो जाते हैं ॥ ६ ॥

अथ मुखपाकप्रतीकारमाह–

जातिप्रवालत्रिफलायवासदार्वीत्रियामामृतगोस्तनीनाम् ॥ कषायकः क्षौद्रयुतो निहन्ति मुखस्य पाकं मुखपङ्कजस्थम् ॥ ७ ॥

जातिप्रवालेति ॥ जातिप्रवालानि मालतीपत्राणि च त्रिफला पथ्याविभीतधात्रीणां समानि फलानि, यवासो यासः, दार्वी त्रियामा पचम्पचा, अमृता गुडूची, गोस्तनी मृद्वीका, जातीप्रवालादीनामष्टानां कषायकः क्वाथः क्षौद्रयुतो मधुसंयुक्तः मुखपंकजस्थं मुखस्य पाकं गण्डूषकरणात् निहन्ति । उक्तं च चक्रपाणिदत्तेन– ‘जातीपत्रामृताद्राक्षायासदार्वीफलत्रिकैः । क्वाथः क्षौद्रयुतः शीतो गण्डूषो मुखपाकनुत्’ इति ॥ ७ ॥ इति मुखपाकोपचारः ॥

भाषार्थः–चमेलीके पत्ते, हरड, बहेडा, आंवला, जवासा, दारुहलदी, गिलोय और मुनक्का इनके काढेमें शहत मिलाकर कुल्ले करनेसे मुखपाक दूर हो जाता है ॥ ७ ॥

अथाम्लपित्तस्य चिकित्सामाह—

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलीवासामृतापर्पटभृङ्गराजैः ॥ क्वाथोहरेत्क्षौद्रयुतोऽम्लपित्तं चित्तं यथा वारवधूविलासः॥ ८॥

भूनिम्बेति ॥ भूनिम्बादिदशभिः कृतः क्वाथः सः क्षौद्रयुतः पीतः सन् अम्लपित्ताभिधं रोगं हरेत् । तत्र दृष्टान्तः । यथा वारवधू वारस्य जनसमूहस्य वधूः

स्त्री तस्या विलासः कामिनश्चित्तं यथा हरेत् तथेत्यर्थः ॥ ८ ॥ इति अम्लपित्तप्रतीकारः ॥

भाषार्थः—चिरायता, नीमकी छाल, त्रिफला, पलवल, अडूसा, गिलोय, पितपापडा और भांगरा इनके काथका शहत मिलाकर सेवन करनेसे अम्लपित्त ऐसे जाता रहता है जैसे स्त्रियोंके हाव-भावसे चित्त परवस हो जाता है ॥ ८ ॥

अथ प्रमेहस्य चिकित्सामाह—

स्फुरत्सुन्दरोदारमन्दारदामप्रकामाभिरामस्तनद्वन्द्व-
रम्ये ॥ हरिद्रारजोमाक्षिकाभ्यां विमिश्रः शिवायाः
कषायः प्रमेहापहारी ॥ ९ ॥

स्फुरदिति ॥ उदारो महांश्चासौ मन्दारश्च तथा तस्य दाम माला स्फुरत् प्रकाशमानं च तत्सुन्दरं शोभनं च तथा स्फुरत्सुन्दरं यत् उदारमन्दारदाम तेन प्रकामं यथेप्सितमभिरामं मनोज्ञम् ईदृशं यत्। स्तनयोर्द्वन्द्वं तेन रम्या रमते मनो यत्र। रमेः पोरदुपधादिति यत् । मनोहरा तत्सम्बोधने हे स्फुरत्सुन्दरोदारमन्दारदामप्रकामाभिरामस्तनद्वन्द्वरम्ये ! शिवायाः धात्र्याः कषायः काथः स च हरिद्रारजसा निशाचूर्णेन माक्षिकेण मधुना च विमिश्रो युक्तः पीतः सन् प्रमेहापहारी मूत्रदोषापहर्ता भवतीति शेषः ॥ ९ ॥

भाषार्थः—हे विकसितमन्दारपुष्पमालाविभूषितकुचद्वन्द्वे! आंवलेके काथमें हलदीका चूर्ण और शहत डालकर पीनेसे प्रमेह रोग नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

अपिच—

समधुश्छिन्नास्वरसो नानामेहनिवारणः ॥
वदन्ति भिषजः सर्वे शरदिन्दुनिभानने ॥ १० ॥

समधुरिति ॥ हे शरदिन्दुनिभानने शारदशशिसमानास्ये ! समधुः मधुसहितः छिन्नाया गुडूच्याः स्वरसः वस्त्रनिष्पीडितो रसः । स्वरसलक्षणं यथा–' अहतात्तत्क्ष-

आकृष्टात् द्रव्यात् क्षुण्णात् समुद्भवेत् । वस्त्रनिष्पीडितो यश्च स्वरसो रस उच्यते’ इति । स च पीतः सन् नानामेहनिवारणः सर्वमेहनिराकर्ता भवतीति सर्वे विश्वे भिषजो गदहर्तारो वदन्ति व्यक्तं कथयन्ति । तदुक्तम्–‘ गुडूच्याः स्वरसः पेयो मधुना सर्वमेहजित् ’ इति । अपि च–‘ हरिद्रामधुसंयुक्तो रसो धात्र्याः समाक्षिकः’ इति । सर्वमेहजिदिति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ १० ॥

भाषार्थः–हे शरदेन्दुमुखी ! गिलोयके रसमें शहत डालकर पीनेसे अनेक प्रकारके प्रमेह जाते रहते हैं यह सब वैद्योंको संमत है ॥ १० ॥

अथ वातरक्तस्यौषधमाह–

रतिकेलिकलाकुशले विलसद्वलये मलयेन समान-
कुचे ॥ अमृताव्रतती रुबुतैलवती दलयेदनिला-
स्रमुदारतरम् ॥ ११ ॥

रतिकेलीत्यादिना ॥ हे रतिकेलिकलाकुशले रतौ सुरते याः केलयः परीहासाः तासु सुरतक्रीडासु याः कलाः कपटरूपाः तासु कुशला शिक्षिता तत्सम्बोधने । हे विलसद्वलये विलसतीति विलासयुक्ते वलये कङ्कणे यस्याः तत्सम्बोधने । मलयेन समानकुचे । मलयेन चन्दनाद्रिणा समानौ स्थूलत्वेन कठिनत्वेन च तुल्यौ कुचौ स्तनौ यस्याः तत्सम्बोधने । अमृताव्रततिः तन्त्रिकावल्ली रुबुतैलवती एरण्डस्नेहयुक्ता उदारं महत् अनिलास्रं वातरक्तरोगं दलयेत् नाशयेत् । पञ्चाङ्गतैलेनामृतायाः क्राथः पेय इति भावः ॥ ११ ॥

भाषार्थः–हे रतिकेलिकुशले ! हे कंकणशोभिते ! हे चन्दनचर्चितकुचे ! गिलोयके काथमें एरंडका तेल डालकर पीनेसे उत्कट वातरक्त नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

अपिच—

मधूकारुणागोपिकादेवधूपैः शृतं वातरक्तापहं पिण्ड-
तैलम् ॥ कषायः सहैरण्डतैलेन पीतस्तथैरण्डासिं-
हास्यवत्सादनीनाम् ॥ १२ ॥

मधूकेति ॥ मधूका यष्टी, अरुणा माञ्जिष्ठा, गोपिका श्यामा, देवधूपो रालः, एतैः शृतं पक्वं पिण्डतैलसंज्ञकं वातरक्तापहं भवति । अपिच । कषाय इति । एरण्डो गन्धर्वहस्तकः, सिंहास्यो वाजिदन्तकः, वत्सादनी छिन्नरुहा, त्रयाणां कषायः एरण्ड-तैलेन सह पीतः सन् तथा वातरक्तापहो भवति । अत्र चक्रपाणिदत्तेन एरण्डस्थाने चतुरङ्गुल उक्तः । यथा–'वासागुडूचीचतुरङ्गुलानामेरण्डतैलेन पिबेत् कषायम् । क्रमेण सर्वाङ्गजमप्यशेषं जयेदसृग्वातभवं विकारम्' इति ॥१२॥ इति वातरक्तचिकित्सा॥

भाषार्थः–मुलहटी, मजीठ, सारिवा और राल इनसे पकाया हुआ तेल वातरक्तको दूर करता है, तथा एरंड, अडूसा, गिलोय इनके काढेमें एरंडका तेल डालकर पीनेसे भी वातरक्त नष्ट हो जाता है ॥ १२ ॥

अथ विषूचिकोपायमाह—

लशुनजीरकसैन्धवगन्धकत्रिकटुरामठचूर्णमिदं सम-म् ॥ सपदि निम्बुरसेन विषूचिकां हरति भो रति-भोगविचक्षणे ॥ १३ ॥

लशुनेत्यादिना ॥ लशुनो रसोनः, जीरकोऽजाजी, सैन्धवो माणिमन्थं, गन्धकः सौगन्धिकः, त्रिकटु विश्वोपकुल्यामरीचात्मकं त्र्यूषणं, रामठं हिंगु, लशुनादीनां समाहारः । समाहारे नपुंसकम् । रसोनादीनां चूर्णं रजः इदं सर्वं समानभागं ग्राह्यं । तदिदं निम्बुरसेन निम्बूकजलेन सह पीतं वा निम्बूकजलेन वटिकां कृत्वा भक्षितं सत् भो रतिभोगविचक्षणे हे सुरतसम्भोगप्रवीणे ! सपदि शीघ्रं विषूचिकां विषूचीं हरति नाशयति । अस्या निरुक्तिलक्षणे तु–' सूचीभिरिव गात्राणि तुदन्सन्तिष्ठतेऽनिलः । यत्राजीर्णे च सा वैद्यैर्विषूचीति निगद्यते ' इति । ' न तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः । मूढास्तामजितात्मानो लभन्तेऽशनलोलुपाः ' ॥ १३ ॥

भाषार्थः–हे कामकलाकेलिप्रवीणे, लहसन, जीरा, सेंधानमक, शोधी हुई गंधक, त्रिकुटा और हींग इन आठोंको महीन पीसकर नीबूके रसमें गोलियां बनालेवै, ये गोलियां विसूचिकाको नष्ट करती हैं. ॥ १३ ॥

अथ पूर्वार्धेन पिपासायाः परार्धेन वमथोश्चोपचारमाह—

रुग्लाजाब्जवटप्ररोहमधुकैर्मध्वन्वितैःकल्पिता उग्रा-
माशु तृषां भृशं प्रशमयेदास्यान्तरस्था वटी ॥ ए-
लालाजलवङ्गनागचपलास्त्रीकोलमज्जाम्बुदश्रीखण्डं
मधुखण्डयुक्प्रशमयेद्वान्तिं त्रिदोषोद्भवाम् ॥ १४ ॥

रुगिति ॥ रुक् कुष्ठौषधम्, लाजा भ्रष्टाः सतुषतण्डुलाः, अब्जं पद्मफलम्, वटप्ररोहो न्यग्रोधाङ्कुरो यक्षावासस्कन्धजटेति यावत्, मधुकं क्लीतकम्, एतैर्मध्वन्वितैर्माक्षिकयुक्तैः कल्पिता कृता वटी गुटिका सा च आस्यान्तरस्था मुखाभ्यन्तरे धृता सती उग्रां तीव्रां तृषामाशु शीघ्रं भृशं प्रकर्षेण प्रशमयेत् शान्तिं नयेत् । एलाः स्थूलैलाः लाजाः, लवङ्गं देवकुसुमं, नागो नागकेशरः, चपला कणा, स्त्री प्रियङ्गुः, कोलमज्जा बदरीबीजसारः, अम्बुदो मुस्तकः, श्रीखण्डं चन्दनम् । एलादीनां समाहारस्तेन क्लीबता एतेषां चूर्णं मधुखण्डयुक् क्षौद्रसिताभ्यामालोड्यावलीढं सत् त्रिदोषोद्भवां वान्तिं छर्दिं प्रशमयेत् शान्तिं नयेत् ॥ १४ ॥

भाषार्थः—जो विसूचिकावाले रोगीको तृषा बहुत होय तौ कूठ, धानकीखील, कमलगट्टाकी मिंगी, बड़की जटा, और मुलहटी इनको पीसकर शहत मिलाकर गोली बांध लेवै और मुखमें रक्खै इससे अत्यन्त तीव्र प्यासभी नष्ट हो जातीहै ॥ इलायची, धानकी खील, लौंग, नागकेसर, पीपल, प्रियंगु, बेरका गूदा, नागरमोथा और सफेद चन्दन इनके चूर्णमें शहत और खांड़ मिलाकर चाटनेसे त्रिदोषसे उत्पन्न हुई वमन नष्ट हो जातीहै ॥ १४ ॥

श्लोकेनैकेन निदाघोपचारमाह—

रमारम्याकारे चतुरवचने चारुचिकुरे विमूल्यालङ्कारे करतललसन्नीलनलिने ॥ निदाघः संजातस्तव किमु सरोजन्मकदलीदलैः क्लृप्ते तल्पे लघु स्वपिहि साहित्यनिपुणे ॥ १५ ॥

रमेत्यादिना ॥ हे रमारम्याकारे रमा लक्ष्मीस्तद्वद्रम्यः स्वभावसुन्दरः आकार आकृतिर्यस्यास्तत्सम्बोधने । पुनः भोश्चतुरवचने चतुराणि सूत्थानानि वचनानि भाषणानि यस्यास्तम्बोधने । हे चारुचिकुरे चारवश्चिकुराः कुन्तलाः यस्यास्तत्सम्बोधने । पुनश्च अहो विमूल्यालङ्कारे विमूल्या महार्घा अलङ्कारा आभरणानि यस्यास्तत्सम्बोधने । अपि च करतललसन्नीलनलिने करस्य तलोऽनूर्ध्वभागस्तास्मिन् लसत् शोभमानं नीलं सुराज्वालेवाद्भुतवर्णविशिष्टं नलिनमरविन्दं यस्यास्तत्सम्बोधने । तव निदाघो घर्मः सञ्जातः किमु इति प्रश्ने । यदि घर्मः सञ्जातस्तर्हि हे साहित्यनिपुणे हे काव्यप्रबन्धप्रवीणे ! सरोजन्मनः पङ्कजस्य कदल्याः रम्भायाश्च दलानि पर्णानि तैः क्लृप्ते कल्पिते तल्पे शय्यायां लघु क्षिप्रं स्वपिहि शयनं कुरु ॥ १५ ॥

भाषार्थः—हे लक्ष्मीके समान आकृतिवाली ! हे मृदुभाषिणि ! हे सुन्दरकेशवाली ! हे बहुमूल्य आभूषणवाली ! हे करतलधृतनीलकमले ! क्या तुझे गरमीने सताईहै (जो ऐसाहै तो) हे काव्य प्रबन्धप्रवीणे ! पलंगपर कमलदल और केलेके पत्रे विछाकर थोडी देर शयन करो ॥ १५ ॥

अथ पामोपचारमाह—

रसद्विजीरद्विनिशामरीचसिन्दूरदैत्येन्द्रमनःशिलानाम् ॥ चूर्णीकृतानां घृतमिश्रितानां त्रिभिः प्रलेपैरपयाति पामा ॥ १६ ॥ नखमुखलालनसुखदा पामा रामा नितम्बविस्तारा ॥ स्नेहकनकरसगन्धैर्गच्छति पूर्वा परा वशं याति ॥ १७ ॥

रसेत्यादिना ॥ रसः शिवबीजं, द्विजीरौ शुक्लकृष्णभेदात् द्वौ जीरकौ, द्विनिशे हरिद्रा दारुहरिद्रेतिभेदात्, द्वे पीते, मरीचमूषणं, सिन्दूरं नागसम्भवं, दैत्येन्द्रो गन्धकः, मनःशिला कुनटी, चूर्णीकृतानां सम्यक्पिष्टानां पुनश्च घृतमिश्रितानां माहिषनवनीतसहितानामेतेषां त्रिभिः प्रलेपैः पामा कच्छूः अपयाति नश्यति ॥ १६ ॥ १७ ॥

भाषार्थः—पारा, स्याहजीरा, सफेदजीरा, हलदी, दारुहलदी, कालीमिरच, सिन्दूर, गंधक और मनसिल इन सबको महीन

पीसकर घीमें सानकर शरीरपर तीन दिन मर्दन करै तौ खुजली-का रोग नष्ट होजाता है ॥ १६ ॥ नखके अग्रभागसे सहलानेमें सुख देनेवाली कटिभागपर फैली हुई खुजली घी, धतूरा, पारा, और गंधकके चूर्णका मर्दन करनेसे जाती रहती है, इसीतरह नखाग्रभागसे सहलानेपर सुख देनेवाली विस्तृत नितम्बयुक्ता युवती मिष्टभाषण, आभूषण, अनुराग और सुगंधित पदार्थोंसे वशीभूत होतीहै ॥ १७ ॥

अथ विपादिकानिग्रहमाह—

मदनसैन्धवगुग्गुलुगैरिकाज्यमधुबालपङ्कविलेपनात् ॥ स्फुटितमप्यखिलं चरणद्वयं विकचतामरसप्रतिमं भवेत् ॥ १८ ॥

मदनेत्यादिना ॥ मदनः सिक्थकं, सैन्धवं माणिमन्थं, गुग्गुलुर्देवधूपः, गैरिकं गवेधुकं, आज्यं घृतं, मधु क्षौद्रं, बालकं ह्रीबेरं, एषां पङ्कस्य निषद्वरस्य विलेपनाल्लेपात् स्फुटितमपि विकसितमपि चरणद्वयमङ्घ्रियुग्मं विकचं प्रस्फुटितं यत् तामरसं पद्मं तस्य प्रतिमं सदृशं भवेदित्यर्थः । 'स्युरुत्तरपदे प्रख्यः प्रकारः प्रतिमो निभः' इति हेमचन्द्रः ॥ १८ ॥

भाषार्थः–जो विवाईसे दोनों पैर बिलकुल फटगये हों तौभी मोम, सेंधानमक, गूगल, गेरू, घी, शहत और खसकी मरहम बनाकर लगानेसे कमलके समान हो जातेहैं. ॥ १८ ॥

अथ दुर्नामादिरोगाणां निग्रहमाह–

पथ्यातिलारुष्करकैः समांशैर्गुडेन युक्तैः खलु मोदकः स्यात् ॥ दुर्नामपाण्डुज्वरकुष्ठकासश्वासं जयेत् प्लीह-रुजं च तद्वत् ॥ १९ ॥

पथ्येत्यादिना ॥ पथ्या हरीतकी, तिलाः स्वनाम्ना प्रसिद्धाः पितृतर्पणाः, अरुर्व्रणं करोति । दिवाविभेति टः । अरुष्करको भल्लातकः, एतैः समांशैः समानभागै

गुडेन द्विगुणेन युक्तैः खलु निश्चयेन मोदको लड्डुकः स्यात् । स खादितः सन् दुर्नामपाण्डुज्वरकुष्ठकासश्वासं तद्वत् प्लीहरुजं च जयेत् ॥ १९ ॥

भाषार्थः—हरड, तिल, भिलावा इन तीनोंको समान भाग लेकर दूने गुड़में गोलियां बनालेवै, ये गोलियां बवासीर, पांडुरोग, ज्वर, कोढ़, खांसी, श्वास और तापतिल्लीको दूरकर देतीहैं. ॥ १९॥

अथ गण्डमालोपचारमाह—

भल्लातकासीसहुताशदन्तीमूलैर्गुडस्नुग्रविदुग्धदिग्धैः ॥ लेपो चितैर्गच्छति गण्डमाला समीरवेगादिव मेघमाला ॥ २० ॥

भल्लातकेति ॥ भल्लातो वीरवृक्षः, कासीसं गौडभाषया हीराकसीस इति ख्यातः उपधातुविशेषः, हुताशश्चित्रकः, दन्तीमूलं एरण्डपत्रिकाबुध्नः, एतैश्चतुर्भिः कथम्भूतैः गुडस्नुग्रविदुग्धदिग्धैः गुडेन स्नुहीदुग्धेन अर्कदुग्धेन च दिग्धैः लिप्तैर्युक्तैरितियावत् पुनश्च लेपोचितैः लेपक्रियायोग्यैः कृतलेपा गण्डमाला समीरवेगान्मेघमालेव गच्छति ॥ २० ॥

भाषार्थः—भिलावा, कसीस, चीता जमालगोटाकी जड, इनको पीसकर गुड़, थूहरका दूध, आकका दूध इनको मिलाकर लेप करनेसे गंडमाला ऐसे जाती रहतीहै जैसे प्रचंड पवनके चलनेसे मेघोंके समूह जाते रहतेहैं ॥ २० ॥

अथ कण्ठामयस्य प्रतीकारमाह—

गोमूत्रेण कृतः कलिङ्गकटुकापाठावृषाब्दामरक्काथः क्षौद्रयुतो निहन्ति सकलान्कण्ठामयानुत्कटान् ॥ पाठातेजवतीरसाञ्जनयवक्षारोपकुल्यानिशादेवानां मधुना कृता मुखधृता तद्वद्वटी वर्तते ॥ २१ ॥ भूनिम्बानिम्बत्रिफलापटोलवासाऽमृतापर्पटमार्कवाणां-

म् ॥ क्काथो हरेत् क्षौद्रयुतोऽम्लपित्तं चित्तं यथा वारवधूकटाक्षाः ॥ २२ ॥

गोमूत्रेणेति ॥ कलिङ्गमिन्द्रयवं, कटुका कट्वी, पाठा वृकी, वृषो आटरूषः, अब्दो मुस्तकः, अमरो देवदारुः, एषां क्काथो गोमूत्रेण साधितः पुनः क्षौद्रयुतो मधुसहितः पीतः सन् उत्कटान् दुःसहान् सकलान् कण्ठामयान् निहन्ति । पाठा वृकी, तेजवती गजपिप्पली, रसाञ्जनं तार्क्ष्यशैलम् , यवक्षारो यवाग्रजः, उपकुल्या वैदेही, निशा हरिद्रा, देवो देवदारुः, चूर्णीकृतानामेषां मधुना कृता वटी गुटिका मुखे धृता सती तद्वद्वर्तते पूर्वोक्तक्काथवत् कण्ठामयघ्नी भवति ॥ इति कण्ठरोगप्रतीकारः॥२१॥२२॥

भाषार्थः–इन्द्रजौ, कुटकी, पाठा, अतीस, नागरमोथा, देवदारु इनका काथ गोमूत्रमें तयारकर शहत डालकर पीनेसे सब प्रकारके भयंकर कंठरोग जाते रहते हैं॥ और पाठा, गजपीपल, रसौत, जवाखार, पीपल, हलदी और देवदारु इनके चूर्णमें शहत मिलाकर गोलियां बांधलेवै, ये गोलियां मुखमें रखनेसे सब प्रकारके कंठरोगोंको दूर करतीहैं ॥ २१ ॥ चिरायता, नीमकी छाल, त्रिफला, परवल, अडूसा, गिलोय, पितपापड़ा और भांगरा इनका काथ शहत डालकर पीनेसे अम्लपित्तको ऐसे नष्ट करदेता है जैसे वाराङ्गनाओंके कटाक्ष मनुष्यके मनको वशीभूत करलेतेहैं ॥ २२॥

मन्दाग्नेश्चिकित्सामाह––

प्राणेश्वर प्रियतमे वद किं वदामि तत्कान्त तत्किमु मृगाक्षि यदग्निकारि ॥ सम्यक् शृणु प्रणयिनि प्रणयिन्शृणोमि खादेत्सनिम्बुरससैन्धवशृङ्गवेरम् ॥२३॥

प्राणेश्वरेति ॥ उत्तरप्रत्युत्तरेणास्य श्लोकस्य व्याख्या । हे प्राणेश्वर हे प्राणनाथ! तद्वद । हे प्रियतमे हे प्रेष्ठे ! तत्किं वदामि। हे कान्त हे पते! यदाग्निकारि तत् किमु । हे मृगाक्षि हे प्रणयिनि हे जाये ! तत् सम्यक् सन्देहं विहाय शृणु । हे प्रणयिन् हे स्वामिन् ! शृणोमि ! सनिम्बुरससैन्धवं शृङ्गवेरमार्द्रकमग्निकारि भवतीत्युक्तम् ॥ २३॥

भाषार्थः–हे प्राणेश्वर ! हे कान्त ! अग्निसंदीपन करनेवाली कौनसी वस्तु है सो मुझे बताओ यह सुन लोलिम्बराज बोले हे मृगाक्षि! हे प्रणयिनि ! नीबूका रस और सेंधानमक मिलाकर अदरखका सेवन करनेसे अग्नि प्रदीप्त होजातीहै ॥ २३ ॥

अश्मर्यादिरोगाणां भेषजमाह––

हिङ्गुक्षारद्वयसैन्धवसौवर्चलबिडपिप्पलीग्रन्थिकाचित्रकचव्यमरीचकुस्तुम्बरीवर्वरीतिन्तिडीषड्ग्रंथाजमोदाम्लवेतसपुष्करमूलनागरकरञ्जजीरकहरीतकीवृकीवपुषाभिः[1]॥ विरचितं[2] चूर्णं[4] इदं[3] अश्मरीहृदयगलरोगविबन्धाध्मानहिक्कावर्ध्मगुदजगुल्मसकलशूलप्लीहपाण्डुश्वसनकसनदहनसदनवदनविरसताविरं[5]तये समर्थतरम्[6] ॥ २४ ॥

हिङ्ग्वित्यादिना ॥ हिङ्गु बाल्हीकं, क्षारद्वयं सर्जिकायवक्षारौ, सैन्धवं, सौवर्चलमक्षं, बिडं कृत्रिमलवणं, पिप्पली, ग्रंथिकं पिप्पलीमूलं, चित्रको वह्निसंज्ञकः, चव्यं चविका, मरिचं कोलकं, कुस्तुम्बरी धान्याकं, वर्वरी अजगन्धा, तिन्तिडी बीजाम्लम्, षड्ग्रन्था वचा, अजमोदा, अम्लवेतसः फलाम्लः, पुष्करमूलं श्वासारिः, नागरं शुण्ठी, करञ्जश्चिरबिल्वः, जीरको जरणः, हरीतकी, वृकी पाठा, वपुषा हपुषा, हिङ्ग्वादिभिर्विरचितं चूर्णमेतेषां पेषणेनोद्भूतं रजः अश्मर्यादीनां विरतये निवृत्तये समर्थतरम् अतिशयशक्तियुक्तं भवतीत्यन्वयः।तत्राश्मरी मूत्रकृच्छ्ररोगः, हृदयरोगो हृद्रोगः, गलरोगो गलाङ्कुरः, विबन्धो मूत्रपुरीषरोधक आनाहरोगः, आध्मानः 'साटोपमत्युग्ररुजमाध्मातमुदरं भृशम् । आध्मानमिति जानीयात् घोरं वातनिरोधजम्' इति । लक्षितो वातव्याधिः, हिक्का ऊर्ध्ववातात्मको रोगविशेषः, वर्ध्म वक्षणः सन्धिजशोफःइति श्रीहरिनाथः । गुदजमर्शोरोगः, गुल्मः कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरूपी रोगविशेषः, सकलशूलाः 'दोषैः पृथक्समस्तामद्वन्द्वैः शूलोऽष्टधा भवेत्' इत्युक्ताः सर्वे शूलाः प्लीहा कुक्षिवामपार्श्वस्थो मांसखण्डः पाण्डुः रोगविशेषः श्वसनं श्वासरोगः कसनं कासः दहनसदनमग्निमान्द्यं वदनविरसतास्यवैरस्यम् ॥ २४ ॥

भाषार्थः-हींग, सज्जीखार, जवाखार, सेंधानमक, कालानमक, खारीनमक, पीपल, पीपलासूल, चीता, चव्य, कालीमिरच, धनिया, अजगन्ध, इमली, बच, अजमोद, अमलवेत, पुहकरमूल, सोंठ, कंजा, जीरा, हरड, पाठा और हाऊबेर इनका चूर्ण बनाकर सेवन करनेसे पथरी, हृद्रोग, कंठरोग, अफरा, हिचकी, बध्मरोग, ववासीर, गुल्मरोग, सब प्रकारके शूल, प्लीहा, पांडुरोग, श्वास, खांसी, मन्दाग्नि, मुखकी विरसता, ये सब रोग दूर होजातेहैं ॥२४॥

हिङ्गुव्योषाजमोदाद्विजरणलवणं प्राग्भजेत्साज्यंभुक्तं कुर्याज्जाज्वल्यमानं ज्वलनमनिलजं गुल्ममेतन्निहन्ति ॥ वृक्षाम्लाम्लाग्निपथ्यात्रिकटुपटुविडंजन्तुजिज्जीरयुग्मं दीप्यौ सौवर्चलं चाऽचलमपि सकलं भस्मसाच्चकरीति ॥ २५ ॥

हिंग्विति ॥ हिंगु रामठम्, व्योषं त्रिकटु, अजमोदा यवानिका, द्विजरणं जरिकद्वयम्, लवणं सैन्धवम्, एतदुक्तं हिङ्ग्वष्टकाख्यं चूर्णं साज्यं घृतमिश्रितं प्राग् भजेत् भोजनात् प्रथमं स्वीकुर्यात् तदेतत् भुक्तं सत् ज्वलनं जाठराग्निं जाज्वल्यमानं देदीप्यमानं कुर्यात् । अनिलजं वातात्मकं गुल्मं च निहन्ति । अपि च वृक्षाम्लेति-वृक्षाम्लं तिन्तिडीकम्, अम्लोऽम्लवेतसः, अग्निश्चित्रकः, पथ्या हरीतकी, त्रिकटु त्र्यूषणं, पटु माणिमन्थं, विडं कृत्रिमलवणं, जन्तुजित् जन्तुघ्नं, जीरयुग्मं कृष्णशुक्लभेदाज्जीरकद्वयं, दीप्यावजमोदायवान्यौ, सौवर्चलं सुष्ठु वर्च्यते । वर्चदीप्तौ कलच् अण् । सौवर्चलं कृष्णलवणम्, च शब्दादेषां चूर्णं सकलमखिलमभ्यवहृतमचलमपि अहार्यमपि भस्मसाच्चकरीति भस्माधीनमतिशयेन करोति सर्वं पाचयतीत्यर्थः ॥ २५ ॥

भाषार्थः-हींग, सोंठ, कालीमिरच, पीपल, अजमोद, जीरा, कालाजीरा, सेंधानमक यह हींगाष्टक नामक चूर्ण घृत मिलाकर, भोजन करनेसे पहिले सेवन करनेसे जठराग्निको संदीपन करता है और वायुगोलाको दूर करदेताहै ॥ तथा इमली, अमलबेत,

चीता, हरड़, सोंठ, मिरच, पीपल, सेंधानमक, खारीनमक, बायबिडंग, कालाजीरा, सफेदजीरा, अजमोद, अजवायन, कालानमक इनका चूर्ण बहुत गरिष्ठ भोजनको भी पचाकर भस्म करदेताहै ॥ २५ ॥

अथ लोलिम्बराजाभिधं चूर्णमाह--

शुण्ठी बाणमिता कणार्णवमिता दीप्यायवान्योः क्रमाद्भागानां त्रितयं द्वयं च लवणाद्भागः शिवैतत्समा ॥ कोष्ठाटोपरुगामगुल्ममलहल्लोलिम्बराजोदितश्चूर्णोऽद्रीनपि भस्मसात्प्रकुरुते किं भोजनं भो जनाः ॥ २६ ॥ जिह्वाकण्ठहृदां विशोधनकरं वैस्वर्यशोफापहं ग्राहिश्वासबलासकासचलजिद्वृष्यं कटूष्णं लघु ॥ पाके स्वादु निबन्धनुद्रुचिकरं क्षुद्बोधनं भोजने भोक्तव्यं सह सैन्धवेन च तथा निम्बूद्रवैरार्द्रकम् ॥ २७ ॥

शुण्ठीति ॥ शुण्ठी बाणमिता शुण्ठ्याः पञ्चभागा ग्राह्याः, कणार्णवमिता पिप्पल्याश्चत्वारः, दीप्या अजमोदा तस्या भागत्रितयं, यवान्या भागद्वयं, लवणादेकोभागो ग्राह्यः, एतत्समा एतैः पञ्चदशभिर्भागैः समा समाना शिवा हरीतकी ग्राह्या । भो जनाः हे लोकाः कोष्ठाटोपरुगामगुल्ममलहृत् कोष्ठे कुक्षौ आटोप आनाहो निबन्ध इति यावत् । यद्वा आटोपो वायुजनितो गुडगुडाशब्दः रुक् कोष्ठे शूलम् आमं षट्प्रकाराजीर्णरोगमध्ये रोगविशेषः गुल्मो वायुजनित उदरे वर्तुलाकारो रोगः मलो विड्रोगः एतान् रोगान् हरतीति हृत् एतादृशोऽयं लोलिम्बराजोदितः चूर्णो भुक्तः सन् अद्रीन् गिरीनपि भस्मसात् भसिताधीनान् प्रकुरुते । अन्नस्य भोजनं भस्मसात्करोतीति किं वक्तव्यम् ॥ २६ ॥ २७ ॥

भाषार्थः–सोंठ, पांचभाग, पीपल चार भाग, अजमोद तीन भाग, अजवायन दो भाग, सेंधानमक एक भाग, हरड़ पन्द्रह भाग इनका चूर्ण पेटके गुडगुड़ाहट, पेटका शूल, आमरोग, बातगुल्म, मलनिबंध इनका नाश करताहै, हे प्रियवरो! लोलिम्बराजका कहा हुआ यह चूर्ण पर्वतोंकोभी भस्म करदेताहै फिर भोजनका पचाना किस गिनतीमेंहै ॥ २६ ॥ अदरखमें सेंधानमक और नीबूका रस मिलाकर सेवनकरना जिव्हा, कंठ और हृदयको शुद्ध करताहै, स्वरके बिगड़जाने और सूजनको दूर करताहै, मलको बांधताहै, श्वास कफ, खांसी और वायुको नष्ट करताहै, पुष्टिकारक है, कटु, उष्ण और लघु है, पाकमें स्वादु है, विबन्धनाशक है, रुचिकारक है और भूकको बढ़ानेवाला है. ॥ २७ ॥

हृद्व्रणस्य प्रतीकारमाह–

शिग्रुदीप्यवरुणाद्वियामिनीकुञ्जराशनकृतः कषायकः ॥
बोलचूर्णसहितोऽन्तरस्थितं विद्रधिं प्रशमयेदसंशयम् ॥ २८ ॥

शिग्रिवति ॥ शिग्रुः शोभाञ्जनः, दीप्यो यवानी, वरुणस्तमालः द्वियामिनी हरिद्राद्वयं, कुञ्जराशनः पिप्पलः, एतैः कृतः कषायकः बोलचूर्णसहितः पूते काथे चूर्णः प्रक्षेप्तव्यः । अयं चूर्णेन भक्षितः सन् अन्तरास्थितं विद्रधिं हृद्व्रणम् असंशयं निःसंन्देहं प्रशमयेत् अन्तर्गतं विद्रधिं पक्त्वा स्फोटयेदित्यर्थः ॥ २८ ॥

भाषार्थः–सहजना, अजवायन, वरनाकी छाल, हलदी, दारुहलदी, पीपलवृक्षकी छाल इनका काढा कर छानले फिर उसमें बोलका चूर्ण मिलाकर पीवै. यह काथ विद्राधि अर्थात् हृदयके भीतरके फोड़ेको पकाकर फोड़ डालताहै ॥ २८ ॥

अथ हृद्रोगस्य चिकित्सामाह–

कमलकुड्मलकल्पपयोधरद्वयसमाहितहारमनोहरे ॥
हृदयरुक्षु हितं घृतमर्जुनस्वरसकल्कसुसाधितमङ्गने ॥ २९ ॥

कमलेत्यादिना ॥ हे कमलकुड्मलकल्पपयोधरद्वयसमाहितहारमनोहरे कमलस्य कुड्मलः मुकुलः तादृशयोः पयोधरयोर्द्वयं तत्र समाहितः सम्यक्प्रकारेण विन्यस्तो यो हारस्तेन मनोहरे हे अङ्गने प्रशस्तान्यङ्गान्यस्याः । अङ्गात्कल्याण इति नः। तत्सम्बोधने हृदयरुक्षु हृद्रोगेषु अर्जुनस्य ककुभतरोः स्वरसकल्काभ्यां साधितं सिद्धं घृतं हितं भवति । उक्तं च--'पार्थेन कल्केन रसेन सिद्धं शस्तं घृतं सर्वहृदामयेषु' इति । कुड्मलो मुकुलोऽस्त्रियामित्यमरः ॥ २९ ॥

भाषार्थः–कमलकलीके समान कुचों पर सुशोभित हारवाली प्रिये ! अर्जुनके रस वा कल्कके साथ पकाया हुआ घी हृदयके रोगोंके दूर करनेमें हित है ॥ २९ ॥

अथ दन्तरोगस्यौषधमाह–

सोऽयं सुगन्धिमुकुलो बकुलो विभाति वृक्षाग्रणीः प्रियतमे मदनैकबन्धुः ॥ यस्य त्वचैव चिरचर्वितया नितान्तं दन्ता भवन्ति चपला अपि वज्रतुल्याः ॥ ३० ॥

सोऽयमिति ॥ हे प्रियतमे स प्रसिद्धः वृक्षाग्रणीः तरुश्रेष्ठः सुगन्धिमुकुलः सुगन्धीनि मुकुलानि ईषद्विकासोन्मुखाः कलिका यस्य तादृशः । अथ च मदनैकबन्धुः कामस्याद्वितीयः सुहृत् बकुलः शीधुगन्धः अथ ते पुरोवर्ती विभाति शोभते । स कः यस्य चिरचर्वितया त्वचा बहुकालं भक्षितेन वल्कलेन नितान्तमत्यन्तं चपला अपि दन्ताः वज्रतुल्या भवन्ति ॥ ३० ॥

भाषार्थः–हे प्रियतमे ! यह जो सुगन्धित कलियोंसे युक्त कामदेवका एक मात्र बन्धु जो सन्मुख सुशोभित हो रहाहै उसका बहुत दिन तक दांतन करनेसे बहुत हिलते हुए दांतभी वज्रवत हो जाते हैं ॥ ३० ॥

अथ रक्तपित्तप्रतीकारमाह—

द्राक्षापथ्याकृतः क्वाथः शर्करामधुमिश्रितः ॥
श्वासकासहरो देयो रक्तपित्तप्रशान्तये ॥ ३१ ॥

द्राक्षेत्यादिना ॥ सामान्येनास्य लक्षणं तु—'ततः प्रवर्तते रक्तमूर्ध्वं चाधो द्विधापि वा' रक्तमित्युपलक्षणम् । तत्संसर्गि पित्तं च । अतएव रक्तं च पित्तं च

रक्तपित्तमिति द्वन्द्व इति सुश्रुतः । रक्तं च तत् पित्तं चेति रक्तपित्तं रागप्राप्तं पित्तमिति कर्मधारय इति चरकः । मार्गानाह--'ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः । कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्तते ' । कुपितमतिकुपितमिति भावमिश्रः । हे प्रियतमे ! रक्तपित्तप्रशान्तये श्वासकासहरः श्वासकासौ हरति एवंभूतो द्राक्षापथ्याभ्यां निर्मितः कषायः सिद्धे पूते च तत्र शर्करामधुनी निक्षिप्य त्वया देयः ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—मुनक्का और हरडकी छालका काथ शहत मिश्री मिलाकर रक्तपित्तकी शान्तिके लिये दिया जाता है, यह श्वास और खांसीकोभी दूर करता है ॥ ३१ ॥

अपिच—

भिन्दन्ति के कुञ्जरकर्णपालिं किमव्ययं वक्ति रते नवोढा ॥ सम्बोधनं नुः किमु रक्तपित्तं निहन्ति वामोरु वद त्वमेव ॥ ३२ ॥

भिन्दन्तीति ॥ सिंहानन इति बहिर्लापनेनोत्तरम् । प्रश्नोत्तराभ्यामस्यव्याख्या । वामौ वल्गू ऊरू जानूपरिभागौ यस्याः । संहितशफलक्षणवामदेश्चेत्यूङ् तत्सम्बोधने हे वामोरु । कुञ्जराणां दन्तिनां कर्णपालीः कर्णान्दूः के भिन्दन्ति के विदारयन्ति सिंहाः । पुनः नवोढा नूतनविवाहिता रते प्रथमसुरते किमव्ययं अव्ययपदं किं वक्ति न । नुः नृशब्दस्य संबोधनं किम् नः । रक्तपित्तं रागप्राप्तं पित्तम् उ इति विस्मये। मम विस्मयोऽस्ति किं निहन्तीति । अतो हे वामोरु! एतदुत्तरं त्वमेव वद स्पष्टतय कथय। सिंहाननः सिंहाननसमपुष्पत्वात् सिंहाननो वासकः व्यस्तसमस्तजातिः ॥३२॥

भाषार्थः—हे वामोरु ! हाथीके मस्तकको कोन विदीर्ण करता है? (सिंहाः) नवविवाहिता स्त्री किस अव्यय शब्दका उच्चारण करती है ? (न) नृ शब्दका संबोधनमें कैसा रूप होताहै ?(नः) और रक्तपित्तको कोनसी औषधि नष्ट करती है (सिंहानन) अर्थात् अडूसेका क्काथ रक्तपित्तको दूर करता है ॥ ३२ ॥

अथ हिक्काप्रतीकारमाह--

विश्वाकणाशिवाचूर्णः ससितः समधुः स्मृतः ॥ नस्यंवह्निश्वगुडयोर्हिक्काधिक्कारकारकः ॥ ३३ ॥

विश्वेति ॥ हिक्कायाः सामान्यलक्षणं यथा–' मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सस्वनो यकृत्प्लीहान्त्राणि मुखादिवाक्षिपन् । सदोषवानाशु हिनस्त्यसून्यतस्ततस्तु हिक्केत्यभिधीयते बुधैः' इति । हे वामोरु ! विश्वा शुण्ठी, कणा पिप्पली, शिवा धात्री, त्रयाणां चूर्णः सितामधुभ्यां सहितो हिक्काधिकारकर्ता भवति । किंवत् विश्वगुडयोर्नस्यवत् यथा गुडशुण्ठ्योर्नस्यं हिक्कातिरस्कारं करोति तद्वत् । अनेन योगद्वयमुक्तम् ॥ ३३ ॥

भाषार्थः–सोंठ, आंवला, पीपल इनका चूर्ण शहत मिश्री मिलाकर सेवन करनेसे अथवा सोंठ और गुडको मिलाकर नस्य लेनेसे हिचकी रोग दूर होजाता है ॥ ३३ ॥

दुरालभाकषायस्य घृतयुक्तस्य सेवनात् ॥
भ्रमः शाम्यति गोविन्दचरणस्मरणादिव ॥ ३४ ॥

दुरालभेति ॥ दुरालभाया यवासस्य क्वाथः कर्तव्यः घृतयुक्तस्य तस्य सेवनात् तत्पानाभ्यासात् भ्रमो मिथ्यामतिः शाम्यति । तत्र दृष्टान्तः कस्मात् कइव गोविन्दचरणस्मरणात् गोभिर्वाणीभिर्वेदान्तवाक्यैर्विन्दते प्राप्यते इति गोविन्दः परमात्मा । 'गोभिरेव यतो वेद्यो गोविन्दः समुदाहृतः' इति विष्णुतिलकोक्तेः । तस्य चरणं पदं तस्य स्मरणात् ध्यानात् अविद्याकल्पितो भ्रम इवेत्यर्थः ॥ ३४ ॥

भाषार्थः–जवासेके काथमें घृत मिलाकर सेवन करनेसे चित्त भ्रम ऐसे नष्ट होजाता है जैसे गोविन्दचरणोंका स्मरण करनेसे अविद्यासे कल्पित भ्रम दूर होजाते हैं ॥ ३४ ॥

शोकप्रतीकारमाह—

अयि रत्नकले कुरु मा कलहं कलहंसकलत्रसलीलगते ॥
शृणु मद्वचनं वद वैद्यमणे मदिरा मदिराक्षि शुचं शमयेत् ॥ ३५ ॥

अयीति ॥ अयि रत्नकले कलहं युद्धं मा कुरु । तर्हि मया किं कर्तव्यमत आह—हे कलहंसकलत्रसलीलगते कलो मधुरवाग्घंसः कादम्बस्तस्य कलत्रं स्त्री तद्वत् सलीलगते लीलया विलासेन सहिता गतिर्गमनं यस्यास्तत्सम्बोधने मद्वचनं शृणु । हे वैद्यमणे ! तद्वद । हे मदिराक्षि मदिरामत्तस्य अक्षिणी इव घूर्णायमाने अक्षिणी यस्या-

स्तत्सम्बोधने मदिरा रामप्रिया प्रसन्ना निपीता सती शुचं शोकं हरेत् । दुःखविस्मारकत्वात् ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—हे हंसके समान चालवाली रत्नकले ! क्यों क्लेश करती है मेरी बात सुन, कि मदिरा पान करनेसे मत्त हुएके नेत्रोंके समान नेत्रवाली ! मदिरा पान करनेसे सब शोक दूर होजातेहैं ॥ ३५ ॥

अथोरुस्तम्भप्रतीकारमाह—

पुनर्नवानागरदारुपथ्याभल्लातकच्छिन्नरुहाकषायः ॥
दशाङ्घ्रिमिश्रः परिपेय ऊरुस्तंभेऽथवा मूत्रपुरप्रयोगः॥३६॥

पुनर्नवेति ॥ पुनर्नवा शोथघ्नी, नागरं शुण्ठी, दारु देवदारु, पथ्या हरीतकी भल्लातको अग्निमुखी, छिन्नरुहा गुडूची, दशाङ्घ्रिमिश्रः पूर्वोक्तदशमूलेन सहितः, षोडशानामेतेषां कषायः ऊरुस्तम्भे परिपेयः पातुं योग्यः । तथाह चक्रपाणिदत्तः—' भल्लातकामृताशुण्ठीदारुपथ्यापुनर्नवाः । पञ्चमूलीद्वयोन्मिश्रा ऊरुस्तम्भनिवारणाः ' इति । अथवा पक्षान्तरे मूत्रपुरप्रयोगः गोमूत्रगुग्गुल्वोः साधनं कर्तव्यम् । यथोक्तं—' ऊरुस्तम्भविनाशाय पुरं मूत्रेण वा पिबेत् ' इति ॥ ३६ ॥

भाषार्थः—ऊरुस्तंभ रोगमें सांठकी जड़, सोंठ, देवदारु, छोटी हरड, भिलावा, गिलोय इनके काढ़ेमें दशमूलका चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये अथवा गोमूत्रमें गूगल सिद्ध करके सेवन करै॥३६॥

अथ मूत्रकृच्छ्रस्य चिकित्सामाह—

सक्षौद्रं कुशकाशगोक्षुरशिवाशम्याकपाषाणभिद्दुः-
स्पर्शं परिसेवितं परिहरेत्सद्योऽश्मरीं दुस्तराम् ॥
एलापर्वतभिच्छिलाजतुकणाचूर्णं गुडेनान्वितं यद्वा
तण्डुलधावनोदकयुतं स्यान्मूत्रकृच्छ्रापहम्॥ ३७ ॥

सक्षौद्रमिति ॥ कुशो दर्भः, काशः पोटगलः, अनयोर्मूलं ग्राह्यं । गोक्षुरो गोक्षुरकः, शिवा हरीतकी, शम्याक आरग्वधः, पाषाणभित् पाषाणभेदनः, दुःस्पर्शो यवासः, एषां समाहारे द्वन्द्वैक्यं क्लीबत्वं च । एतत्सक्षौद्रं माक्षिकमिश्रितं परिसेवितं पीतं सत् दुस्तरां तर्तुमशक्यामश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं परिहरेत् । उक्तं च—' त्रिकण्टकार व-

श्वदर्भकाशकुशालभापर्वतभेदपथ्याः । निघ्नन्ति पीता मधुनाश्मरीं च सम्प्राप्तमृत्योरपि मूत्रकृच्छ्रम्' इति । अपि च एला सूक्ष्मैला, पर्वतभित् शिलाभेदः, शिलाजतु गैरेयम्, कणा चपला, एषां चूर्णं गुडेन गुडरसेन पीतं यद्वा तण्डुलधावनोदकयुतं तेन सार्धं पीतं मूत्रकृच्छ्रापहं स्यात् ॥ ३७ ॥

भाषार्थः—कुशा, कांसकी जड़, गोखरू, हरड़, अमलतास, पाषाणभेद और जवासा इनके क्वाथमें शहत डालकर पीनेसे दारुण पथरी रोग शीघ्र नष्ट होजाता है ॥ और इलायची, पाषाण भेद, शिलाजित और पीपल इनके चूर्णमें गुड़ मिलाकर सेवन करै अथवा चांवलोंके धोये हुए जलके साथ इस चूर्णका सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र दूर होजाताहै ॥ ३७ ॥

अपिच—

वासैलामधुकाश्मभेदचपलाकौन्तीक्षुरैरण्डजः क्वाथः साश्मजतुर्जयत्यतितरां कृच्छ्राश्मरीशर्कराः ॥ कृच्छ्रे दाहरुजाविबन्धसहिते क्वाथोऽश्मभिद्गोक्षुरानन्तारग्वधचेतकीविरचितो मध्वन्वितः शस्यते ॥ ३८ ॥

वासेति ॥ वासा वासकः, एला उपकुञ्चिका, मधुकं क्लीतकं, अश्मभेदः पाषाणभेदः, चपला कणा, कौन्ती रेणुका, इक्षुरः कोकिलाक्षः, एरण्ड उरुबूकः, एषां क्वाथः साश्मजतुः शिलाजतुयुक्तोऽतितरामातिशयेन कृच्छ्राश्मरीशर्कराः जयति । तत्र कृच्छ्रं मूत्रकृच्छ्रं अश्मरी मूत्रकृच्छ्रभेदः। यथा—' वातपित्तकफैस्तिस्रश्चतुर्थी शुक्रजा मता । प्रायः श्लेष्माश्रयाः सर्वा अश्मर्यः स्युर्यमोपमाः ' इति । शर्करा तु—' अश्मरी शर्करा चैव तुल्यसंभवलक्षणे । विशेषेण शर्करायाः शृणु कीर्तयतो मम ' । सम्भवः कारणम् । 'पच्यमानाश्मरी पित्ताच्छोष्यमाणा च वायुना । विमुक्तकफसन्धाना क्षरन्ती शर्करा मता ' । पीतेन पच्यमाना मूत्रशुक्रश्लेष्मसंहतिः प्रथमं पित्तेन रञ्जनकर्मणा पच्यमाना पश्चाद्वातेन शोषिता कफेन श्लिष्टा अश्मरी सैव विमुक्तकफसन्धाना त्यक्तकफश्लेष्मा सती शर्करारूपा मूत्रमार्गात् क्षरन्ती शर्करा मता एतावता किञ्चिदेव भेदः । अपि च दाहरुजाविबन्धसहिते कृच्छ्रे दाहेन दहनेन रुजया रोगेण विबन्धेन मूत्रादिरोधेन युक्ते कृच्छ्रे अश्मभिदादिभिर्विरचितः

क्काथः पुनर्मध्वन्वितः माक्षिकयुक्तः शस्यते स्तूयते । उक्तं च–'हरीतकीगोक्षुरराजवृक्षपाषाणभिद्धन्वयवासकानाम् । क्काथं पिबेन्माक्षिकसंप्रयुक्तं कृच्छ्रे सदाहे सरुजं विबन्धे, इति ॥ ३८ ॥

भाषार्थः–अडूसा, इलायची, मुलहटी, पाषाणभेद, पीपल, रेणुक, तालमखाना और एरंडकी जड़ इनके क्काथमें शिलाजित डालकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्र, पथरी और शर्करारोग नष्ट होजाते हैं ॥ और पाषाणभेद, हरड, जवासा, अमलतास, गोखरू, इनके काढ़ेमें शहत मिलाकर पीनेसे दाह, पीडा और बिबन्धसहित मूत्रकृच्छ्र दूर होजाताहै ॥ ३८ ॥

अथ मुखरोगविशेषस्य व्यङ्गस्य चिकित्सामाह–

न्यग्रोधाङ्कुरकुष्ठरोध्रविकसाश्यामामसूरारुणश्रीखण्डैः
पयसान्वितैर्विरचितं व्यङ्गघ्नमुद्वर्तनम् ॥ लिप्तं सप्त-
दिनं मसूररजसा सर्पिः पयः श्यामतावक्त्रं शारद-
चन्द्रसुन्दरतरं व्यङ्गस्य भङ्गाद्भवेत् ॥ ३९ ॥

न्यग्रोधाङ्कुरेत्यादिना ॥ तल्लक्षणं यथा–'क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः । मुखमागम्य सहसा मण्डलं विसृजत्यतः । निरुजं तनुकं यावं मुखे व्यङ्गं तमादिशेत्' इति माधवः । न्यग्रोधाङ्कुरो वटान्नवोत्पन्नोऽङ्कुरः । कुष्ठं पारिभाव्यं, रोध्रो लोध्रः, विकसा जिङ्गी, श्यामा प्रियङ्गुः, मसूरो मङ्गल्यकः, अरुणश्रीखण्डं ताम्रसारं, पयसा क्षीरेण अन्वितैरेतैर्विरचितमुद्वर्तनमुत्सादनं तत् व्यङ्गघ्नं भवति । मसूररजसा मसूरस्य व्रीहिकाश्वनस्य रजसा धूल्या युक्तं सर्पिः पयः सर्पिश्च पयश्च अनयोर्द्वन्द्वैक्यम् सप्तदिनं सप्तदिनावधि लिप्तं दिग्धं तेन व्यङ्गस्य भङ्गात् श्यामतावक्त्रं श्यामता कृष्णवर्णता तया युक्तं मुखं शारदचन्द्रवत् सुन्दरतरमतिशोभनं भवेत् ॥ ३९ ॥

भाषार्थः–बडके अंकुर, कूठ, लोध, मजीठ, प्रियंगु, मसूर और लालचन्दन इनको दूधके साथ पीसकर उवटना बना लेवै, यह मुखकी झांईको दूर करता है ॥ अथवा मसूरके चूनमें घी और

दूध मिलाकर मुखपर मर्दन करै तौ मुखकी झांई दूर होकर सुन्दर चन्द्रमाके समान मुख होजाताहै ॥ ३९ ॥

अपिच–

इङ्गुद्याः फलमज्जको जलयुतो लेपो मुखे कान्तिदो लोध्रोग्राधनिकं निहन्ति पिटकांस्तारुण्यजाँल्लेपनात्॥ हार्यं रक्तमरूंषिकारुजि हितो मूत्रेण लेपोऽथवा पिण्याकस्य नवेतरस्य शकृतः पादायुधस्य ध्रुवम् ॥ ४० ॥

इंगुद्या इति ॥ इङ्गुदी तापसतरुः इङ्गुद्याः फलस्य मज्जको मज्जैव स जलेन युतः कर्तव्यस्तस्य लेपः व्यङ्गस्य भङ्गात् मुखे कान्तिदो दीप्तिप्रदो भवतीति शेषः १। लोध्रो गालवः, उग्रा वचा, धनिको धन्याकम् एषां समाहारः एतल्लेपनात् लेपकरणात् तारुण्यजान् पिटकान् यौवनवस्थोद्भवान्मुखे विस्फोटान् निहन्ति २। 'लोध्रोग्राधनिकं निहन्ति पिटिकास्तारुण्यजा लेपनात्' इति वा पाठः। अरूंषिकारुजि शिरोव्रणरोगे रुधिरं रक्तं हार्यं जलौकया हर्तुं योग्यम् ३। अथवा पक्षान्तरे नवेतरस्य पिण्याकस्य पुराणस्य तिलकल्कस्य मूत्रेण गोजलेन कृतो लेपो हितोऽनुकूलो भवति ४। यद्वा पादायुधस्य कृकवाकोः शकृतो विष्ठाया लेपो हितः ५। इति क्रमेण योगपञ्चकम् ॥ ४० ॥

भाषार्थः–हिंगोटके फलके गूदेका जलमें पीसकर लेप करनेसे मुखकी कान्ति बढ़ती है ॥ जो मुखपर युवावस्थाकी फुन्सियां अर्थात् मुहासे निकल आये हों तौ लोध, बच और धनियेको जलमें पीसकर लगावै ॥ जो सिरमें फोड होगये हों तौ जोक लगवावै अथवा पुराने तिलोंकी खलको गोमूत्रमें पीसकर लगावै अथवा मुर्गेकी बीटका लेप करै ॥ ४० ॥

अथ शोथस्य चिकीत्सामाह–

तैलं शोफमपारमप्यपहरेद्वृश्चीररास्नामहाभैषज्यामरशुष्कमूलकयुतं बिम्बीरसे साधितम् ॥ तद्वद्विश्व-

किराततिक्तमथवा पाठानिशाधावनीमुस्ताजीरकपञ्च-
कोलजरजःसंमिश्रमुष्णाम्बुना ॥ ४१ ॥

तैलमिति ॥ वृश्चीरः श्वेतमूला पुनर्नवा, रास्ना नाकुली, महाभैषज्यं शुण्ठी, अमरो देवदारुः, शुष्कमूलकं निर्जलं हस्तिदन्तकम्, एतैर्युतं तैलं तिलानां स्नेहं मर्दनादपारमुत्तरावधिरहितमपि शोफं श्वयथुमपहरेत्दूरीकुर्यात् यथोक्तम्–'शुष्कमूलकवर्षाभूदारुरास्नामहौषधैः । पक्कमभ्यञ्जनात्तैलं सशूलं श्वयथुं हरेत्' इति । बिम्बीरसे बिम्बिकायाः स्वरसे साधितं सिद्धं विश्वाकिराततिक्तं शुण्ठीचिरतिक्तम् तद्वत् अपारशोफमपहरेत् अथवा । पाठा अम्बष्ठा, निशा हरिद्रा, धावनी कण्टकारी, मुस्ता, जीरकोऽजाजी, पञ्चकोलं प्रसिद्धं । कणामूलकृष्णाचव्याग्निनागरैरित्युक्तं पञ्चोषणम् । एषां रजश्चूर्णमुष्णाम्बुना सह तद्वच्छोथनाशनं भवति ॥ ४१ ॥

भाषार्थः–सफेद सांठकी जड, रास्ना, सोंठ, देवदारु, सूखीमूल इनकी लुगदी करके तिलोंके तेलको पकावै अथवा सोंठ और चिरायतेको कँदूरीके रसमें सिद्ध करके लगावै अथवा पाठा, हलदी, कटेरी, नागरमोथा, जीरा, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनके चूर्णको गरम जलमें मिलाकर लेप करै तौ बड़ीसे बडी सूजनभी दूर होजातीहै ॥ ४१ ॥

अथ शिरोरुक्कर्णशूलयोः प्रतीकारमाह—

उग्रापाठापटोलौषधरुबुकजटाशिग्रुदद्रुघ्नकुष्ठैर्धान्याम्लेन प्रपिष्टैः प्रशमयति महामूर्धरोगानशेषान् ॥
पक्कं पत्रं घृताक्तं रविभवमनले तापितं पीडितं तत्तोयं कर्णे च सिक्तं दलयति सकलं कर्णशूलं समूलम् ॥ ४२ ॥

उग्रेत्यादिना ॥ उग्रा वचा, पाठा अम्बष्ठा, पटोलं कुलकम्, औषधं शुण्ठी, रुबुकजटा एरण्डमूलं, शिग्रु सोभाञ्जनं, दद्रुघ्नश्चक्रमर्दः, कुष्ठं कुष्ठौषधं, धान्याम्लेन

काञ्जिकेन प्रपिष्टैर्मस्तके लिप्तैरेतैः कृतो लेपः अशेषान् महामूर्धरोगान् प्रशमयति समस्तशिरोव्यथानाशको भवति । रविभवमर्कजं पक्कं परिणतं पत्रं दलं घृताक्तमाज्येन व्याप्तं तच्च अनलेऽग्नौ तापितं सन्तप्तम् पुनश्च पीडितं हस्ताभ्यां सम्मर्द्य निष्पीडितं तत्तोयं तस्य जलं कर्णे श्रवणे सिक्तं कृतसेकं सत् समूलं कर्णशूलं दलयति नाशयति । यथोक्तम्–'अर्कस्य पत्रं परिणामपीतमाज्येन लिप्तं शिखियोगतप्तम् । आपीड्य तस्याम्बु सुखोष्णमेव कर्णे निषिक्तं हरतेऽतिशूलमिति ॥ ४२ ॥

भाषार्थः–वच, पाठ, परवल, सोंठ, अरंडकी जड, सहंजना, चरुवड, कूठ इनको कांजीके साथ पीसकर सिरपर लेप करै तौ सिरकी संपूर्ण पीडा दूर हो जाती है. और आकके पके हुए पत्रोंको घीसे चुपड आगपर सेककर उसके रसको कानमें निचोडनेसे सब प्रकारके कर्णशूल दूर हो जाते हैं ॥ ४२ ॥

अथ वातोपचारमाह–

घृततीक्ष्णयुतः सुरसास्वरसो लघुराजमृगाङ्क इति प्रथितः ॥ अपहन्त्यनिलान्सबलान्बहुलान्निजभक्तरिपूनिव चक्रधरः ॥ ४३ ॥

घृततीक्ष्णयुत इति ॥ सुरसा तुलसी तस्याः स्वरसो घृततीक्ष्णयुतः घृतेन मरीचचूर्णेन च युतो युक्तो लघुराजमृगाङ्क इति नाम्ना प्रथितो विख्यातः सोऽयं सेवनेन बहुलान् प्रभूतान् सबलान् बलेन सहितान् अनिलान् वातविकारान् अपहन्ति । अत्र दृष्टान्तः यथा चक्रधरो विष्णुः निजभक्तरिपूनिव । स्वीयभक्तिसंयुक्तानां प्रल्हादादिभागवतानां रिपून् दैत्यानिव ॥ ४३ ॥

भाषार्थः–तुलसीके रसमें घृत और काली मिरच मिलानेसे लघुराजमृगाङ्क बन जाता है, यह अति दारुण वातरोगोंको ऐसे नष्ट कर देता है जैसे चक्रधारी भगवान् अपने भक्तोंके शत्रुओंको नष्ट कर देते हैं ॥ ४३ ॥

चूर्णाः कषाया गुटिका घृतानि तैलानि भागेन च

योजितानि ॥ विलासिनां वातविनाशनाय विलासिनीनां परिरम्भणानि ॥ ४४ ॥

वायोर्बहवो भेदाः सन्त्यतस्तदौषधलेखनाद्ग्रन्थगौरवं स्यात् इति भयात् तान्यत्र न लिखितानि अपेक्षास्ति चेद् ग्रन्थान्तरेभ्यो व्यवहर्तव्यानि एतन्मनसि निधायाह–चूर्णा इति ॥ स्पष्टार्थोऽयं श्लोकः ॥ ४४ ॥

भाषार्थः–चूर्ण, क्वाथ, गोली, घृत और तेल इनका प्रयोग करनेसे वातरोगियोंके वातरोग प्रायः नष्ट हो जाते हैं, परन्तु विलासी पुरुषोंके वातरोगको दूर करनेके लिये तौ विलासवती स्त्रियोंका आलिंगनही हितकर है ॥ ४४ ॥

पित्तौषधमाह–

अमृतममृतजं सितासमेतं गुणवति पित्तमपाकरोति सद्यः ॥ तरुण इव नितम्बिनीनितम्बाम्बरमतनुज्वरजर्जरीकृताङ्गः ॥ ४५ ॥

अमृतमिति ॥ हे गुणवति ! अमृतजं गुडूचीप्रभवममृतं जलं सितासमेतं शर्करासंयुक्तं पीतं सत् पित्तं मायुं सद्यः शीघ्रमपाकरोति दूरीकरोति । तत्र दृष्टान्तः अतनुज्वरेण काममहागदेन जर्जरीकृतानि जीर्णतां गमितानि अङ्गान्यवयवा यस्य स तरुणो युवा नितम्बिन्या विशेषाङ्गनायाः अतिशयनितम्बिन्याः नितम्बाम्बरमिव कटिवस्त्रं यथा तथेत्यर्थः ॥ ४५ ॥

भाषार्थः–हे गुणवती ! गिलोयके रसमें घृत और मिश्री मिलाकर पीना पित्तको ऐसे दूर कर देता है जैसे कामज्वरसे कृश हुआ युवा पुरुष स्त्रीयोंके कटिवस्त्रको दूर कर देताहै ॥ ४५ ॥

कफौषधमाह–

कफोद्भवं ति भो भीरु च्छिन्नाक्काथो मधूदरः ॥

अस्यार्थो लभ्यते नैवं तन्वाङ्गि तव मध्यवत् ॥४६ ॥

इति श्रीमल्लोलिम्बराजकृतौ वैद्यजीवने राजयक्ष्मादिरोगाधिकारो नाम चतुर्थो विलासः समाप्तः ॥

कफादिति ॥ भो भिरु हे भयशीले बिभेति । ञिभी भये भियः क्नुक्लुकनाविति क्नुः । मधूदरः मधु उदरे यस्य माक्षिकक्षेपयुक्तश्छिन्नाकाथः कफाद् कफापहर्ता भवति । कफमत्तीति कफाद् यद्वा अत्तीति अद् अत्ता । अद भक्षणे क्विप् । कफस्य अद् कफाद् । हे तन्वङ्गि ! तव मध्यवत् अस्यायमर्थो नैव लक्ष्यते यथा वस्त्राच्छन्नस्तव कटिदेशः कटिवस्त्रापनयनेन ममैवाधिकारिणः प्रत्यक्षः तथाधिकारिणः पण्डितस्याप्यस्यार्थः प्रत्यक्ष इति भावः ॥ ४६ ॥

इति श्रीकुलावधूतश्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्धरिहरानंदनाथभारतीशिष्यब्रह्मावधूतश्रीसुखानन्दनाथविरचितायां सुखानन्द्यां वैद्यजीवनदीपिकायां क्षयादिरोगनिग्रहनाम्नश्चतुर्थविलासस्य प्रकाशार्थः ॥ ४ ॥

भाषार्थः–हे भीरु ! शहत मिलाकर गिलोयका क्वाथ पीनेसे कफ नष्ट हो जाता है. हे तन्वङ्गि ! इस श्लोकका अर्थ तेरे मध्यभागके तरह जाननेमें नहीं आता है ॥ ४६ ॥

इति चतुर्थविलासस्य भाषाटीका समाप्ता ॥

अथ पञ्चमो विलासः ॥

तत्र वाजीकरणम् ॥

अस्य निरुक्तिस्तु–' यद्द्रव्यं पुरुषं कुर्याद्वाजिवत्सुरतक्षमम् । तद्वाजीकरमाख्यातं मुनिभिर्भिषजां वरैः ' इति । अस्य विधिरपि । ' नरो वाजीकरान् योगान् सम्यक् शुद्धो निरामयः । सप्तत्यन्तं प्रकुर्वीत वर्षादूर्ध्वं तु षोडशात् ॥ न च वै षोडशादर्वाक् सप्तत्याः परतो न च । आयुष्कामो नरः स्त्रीभिः संयोगं कर्तुमर्हति ॥ क्षयवृद्ध्युपदंशाद्या रोगाश्चातीव दुर्जयाः । अकालमरणं च स्याद्भजतः स्त्रियमन्यथा ॥ विलासिनामर्थवतां रूपयौवनशालिनाम् । नराणां बहुभार्याणां विधिर्वाजीकरो हितः ॥ स्थविराणां रिरंसूनां स्त्रीणां वाल्लभ्यमिच्छताम् । योषित्प्रसङ्गात्क्षीणानां क्लीबानामल्परेत-

साम् ॥ हिता वाजीकरा योगाः प्रीत्यपत्यबलप्रदाः । एतेपि पुष्टदेहानां सेव्याः कालाद्यपेक्षया ' इति । तत्रादौ कामोद्दीपनमाह—

ताम्बूलं मधु कुसुमस्रजो विचित्राः कान्तारं सुरतरु नवा विलासवल्त्यः ॥ गीतानि श्रवणहराणि मिष्टमन्नं क्लीबानामपि जनयन्ति पञ्चबाणम् ॥ १ ॥

ताम्बूलमिति ॥ ताम्बूलं पर्णं, मधु मद्यं, विचित्रा नानाविधाः कुसुमस्रजः सुगन्धिपुष्पाणां मालाः, कान्तारं महद्वनम् । ' महारण्ये दुर्गपथे कान्तारं पुन्नपुंसकम्' इत्यमरः । कथंभूतं कान्तारं सुरतरु सुराणां प्रियास्तरवो मन्दारादयश्चूतचम्पकबकुलादयो वा यस्मिंस्तत् । नवा विलासवल्त्यः नवा नूतना विलासवल्त्यो विलासयुक्ताः श्यामा भीरवः श्रवणहराणि शृङ्गाररससूचनेन श्रवणेन्द्रियाकर्षणानि गीतानि मिष्टमन्नं मधुरमदनीयं द्रव्यम् एतान्युक्तानि वस्तूनि क्लीबानां नपुंसकानामपि पञ्चबाणं कामं जनयन्ति कामाग्निं प्रचण्डं कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ १ ॥

भाषार्थः—पानखाना, मद्यसेवन, सुगंधीत पुष्पोंकी माला, नवीन स्त्रीयां, कानोंको सुखद गीत, मिष्टान्न भोजन ये सब नपुंसकोंको भी कामोद्दीपन करते हैं ॥ १ ॥

अत्रौषधान्याह—

संहितेन घृतेन मधुना मधुकं परिसेचितं पिबति योऽनु पयः ॥ नवसुभ्रुवां सुखकरः सततं बहुवीर्यपूरपरिपूरितो भवेत् ॥ २ ॥ मधुयष्टिकणातुगावरावरचूर्णं सितया समन्वितम् ॥ वलितं पलितं विनाशयेन्मतिवीर्यायुरकार्श्यकारणम् ॥ ३ ॥

संहितेनेति ॥ यो नरः आदौ घृतेन सहितेन मधुना परिसेचितं संसिक्तं मधुकं लीढ्वा अनु पश्चात् पयो दुग्धं पिबति स पुरुषो नवसुभ्रुवां नूतनवयःसंपन्नानां कामिनीनां सुखकरः ग्राम्यधर्मातिशयसामर्थ्यात् सुखदायको भवति पुनः बहुवीर्यपूरपूरितः भूयसा रेतसा पूर्णश्च भवतीति ॥ २ ॥ ३ ॥

भाषार्थः—जो पुरुष कामिनियोंको सुरतसे सुख देना चाहै वह मुलहटीके चूर्णको घृत और शहत मिलाकर चाटै, इससे वीर्यकी बहुत वृद्धि होती है ॥ २ ॥ मुलहटी, पीपल, वंशलोचन और विदारीकन्द इनके चूर्णमें मिश्री मिलाकर सेवन करनेसे देहमें झुर्री पडना, बालोंका सफेद होना दूर हो जाता है तथा बुद्धि, वीर्य, आयु और स्थूलता बढतीहै ॥ ३ ॥

अन्यमाह—

अमृतामलकत्रिकण्टकानां हविषा शर्करया निषेवणेन ॥ अजरा अमरा अपारवीर्या अलकेशा अदितेः सुता बभूवुः ॥ ४ ॥

अमृतेति ॥ अमृता गुडूची, आमलकं धात्रीफलं, त्रिकण्टको गोकण्टकः, एषां चूर्णस्य हविषा शर्करया च सहितस्य घृतसिताभ्यां युक्तस्यावलेहस्य निषेवणात् अभ्यासात् कृताभ्यासाः नरा अजरा जरावस्थारहिता अमरा मरणरहिता अपारवीर्या बहुलवीर्यवन्तः अलकेशा अलका धनदपुरी तस्या ईशाश्च ईदृशा ये अदितेः सुताः आदितेयास्तथा ते बभूवुः सञ्जाताः । इयमुक्तिर्बालकार्थे निम्बलड्डुकवत् स्तुतिर्न सत्यार्था । रोचनार्था फलश्रुतिरितिवत् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—गिलोय, आंवला और गोखरू इनके चूर्णको घृत और मिश्रीके साथ सेवन करनेसे मनुष्य अजर, अमर, अपारवीर्य कुबेर और देवताओंके समान हो जातेहैं ॥ ४ ॥

अपिच—

उच्चटामर्कटीगोक्षुरैश्चूर्णितैः शर्करादुग्धसंमिश्रितैः पाचितैः ॥ सेवितैर्वार्धके मानवो मानिनीमानमुच्छेदयेत् किं पुनर्यौवने ॥ ५ ॥

उच्चटेति ॥ उच्चटा गुञ्जा, मर्कटी कपिकच्छुः, गोक्षुरो गोकण्टकः, चूर्णितैः कृतचूर्णैरेतैः शर्करादुग्धसंमिश्रितैः सितागोदुग्धाभ्यां युक्तैः पुनः पाचितैः कृतपाकैः

पुनश्च वार्धक्ययौवनात्परावस्थाया सेवितैरुपयुक्तैरुच्चटादिचूर्णैः मानवो मानिनीमानमुच्छेदयेत् । यौवने पुनः सेवितैः साद्भिः किं पुनर्वक्तव्यं भवति ॥ ५ ॥

भाषार्थः—उटंगनके बीज, कौंचके बीज, और गोखरू इनके चूर्णको फांककर ऊपरसे मिश्री डालकर दूध पीता रहै तौ बुढापेमें भी स्त्रियोंका मानमर्दन कर सक्ता है. यदि युवावस्थामें सेवन करै तौ कहना ही क्या है? ॥ ५ ॥

आपिच—

भुक्त्वोच्चटां क्षीरयुतां विलासी भुङ्क्ते शतं सुन्दरि सुन्दरीणाम् ॥ त्वं तावदेकासि मया तु साद्य भुक्ता रतौ पश्य कुतूहलं मे ॥ ६ ॥

भुक्त्वेति ॥ हे सुन्दरि । 'रूपलावण्ययुक्ता स्त्री सुन्दरीति निगद्यते' । विलासी भोगी पुरुषः क्षीरेण युतां उच्चटां श्वेतगुञ्जां भुक्त्वा सुन्दरीणां शतं भुङ्क्ते । सोच्चटा अद्य मया भुक्ता त्वं तु तावदेकासि । मया तु शतवारं रन्तव्यमतो मे रतौ सुरतविषये कुतूहलं कौतुकं पश्य अवलोकयेति । भुक्त्वावरीमिति वा पाठः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—हे सुन्दरि! सफेद चिरमिठीके चूर्णको दूधमें मिलाकर सेवन करनेसे मनुष्य सौ स्त्रियोंसे भोग कर सकता है, आज मैंने उसीका सेवन किया है तू अकेली आज मेरे रतिकौतुकको देख ॥ ६ ॥

चूर्णो घृतक्षौद्रयुतो रसैः स्वैर्विभाविताया बहुधा विदार्याः ॥ निषेव्यमाणोऽनुदिनं विलासी दशाङ्गनाभिःसह रंरमीति ॥ ७ ॥

चूर्ण इति ॥ स्वैः स्वकीयैः रसैर्जलैर्बहुधा बहुकृत्वा विभाविताया विमिश्रिताया विदार्या इक्षुगन्धायाः घृतक्षौद्रयुतो मध्वाज्याभ्यां संयुक्तश्चूर्णः अनुदिनं प्रत्यहं निषेव्यमाणः कृतसेवनः विलासी स्त्रीणां हावभावज्ञो भोगी पुरुषः दशाङ्गनाभिः सह रंरमीति अतिशयेन रमते इति ॥ ७ ॥

भाषार्थः-विदारीकन्दके चूर्णमें विदारीकन्दके रसकी कई भावना देकर घी और शहत मिलाकर प्रतिदिन सेवन करनेसे मनुष्य दस स्त्रीयोंसे भोग करसकता है ॥ ७ ॥

सहितं घृतदुग्धाभ्यां विदारिप्रभवं रजः ॥ उदुम्बरमितं भुक्त्वा वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ८ ॥

सहितमिति ॥ वृद्धोऽपि स्थविरोऽपि मनुजः विदार्याः शृगालिकायाश्चूर्णं घृतदुग्धाभ्यां सहितं उदुम्बरमितं कर्षपरिच्छिन्नं भुक्त्वा तरुणायते युवेवाचरणं करोति ॥ ८ ॥

भाषार्थः-विदारीकन्दके चूर्णको एक तोलेभर घी और दूधके साथ सेवन करनेसे वृद्ध भी तरुण हो जाताहै ॥ ८ ॥

अपिच--

सौभाग्यपुष्टिबलशुक्रविवर्धनानि किं सन्ति नो भुवि बहूनि रसायनानि ॥ कन्दर्पवर्धिनि परन्तु सिताज्ययुक्ताद्दुग्धादृते न मम कोऽपि मतःप्रयोगः ॥९॥

सौभाग्येति ॥ हे कन्दर्पवर्धिनि! भुवि भूमौ सौभाग्यं सुभगत्वं चक्षुष्यमिति यावत् । पुष्टिः कामस्य पोषणं बलं पराक्रमम् शुक्रं रेतः सौभाग्यादीनां विवर्धनानि बहूनि भूयांसि रसायनानि । जराव्याधिजिदौषधानि । तल्लक्षणमुक्तं भावप्रकाशे-'यज्जराव्याधिविध्वंसि वयसस्तम्भकं तथा । चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं भेषजं तद्रसायनम् ॥ दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः । देहेन्द्रियबलं कान्तिं नरो विन्देद्रसायनात्' इति । किं नो सन्ति अपि तु विद्यन्ते एव । परन्तु किन्तु सिताज्याभ्यां युक्ताद्दुग्धात् ऋते विना मम कोऽपि प्रयोग उत्कृष्टो योगः उपायो न मतः न पूजितः ॥ ९ ॥ इति वाजीकरणम् ॥

भाषार्थ-क्या पृथ्वीमें सौभाग्य, पुष्टि, बल और वीर्यको बढानेवाली कोई औषध नहीं है ? हे कन्दर्पवर्द्धनि ! मिश्री, घी और दूधसे बढकर मेरी समझमें कोई नहीं है ॥ ९ ॥

अथ रसान् वक्तुमुपक्रमते—

अधुना ब्रूमहे सद्यश्चमत्कारकरान् रसान् ॥
यतो न नीरसा भाति कविता कुलकामिनी ॥ १० ॥

अधुनेत्यादिना ॥ हे कन्दर्पवर्धिनि! अधुनेदानीं सद्यः शीघ्रं चमत्कारकरान् आश्चर्यकर्तृन् रसान् पारदप्रधानान् भेषजान् वयं ब्रूमहे कथयामः । 'रसायनार्थिभिर्लोकैः पारदो रस्यते यतः । ततो रस इति प्रोक्तः स च धातुरपि स्मृतः' ॥ इति निरुक्तेः । रसः पारदः यतो यस्मात् कविताकुलकामिनी काव्यरूपा कुलस्त्री नीरसा शृङ्गारादिरसरहिता न भाति नो शोभते । आह च—'तया कवितया किं वै किंवा वनितया तया । पदविन्यासमात्रेण यया नापहृतं मनः' इति ॥ १० ॥

भाषार्थः—अब हम तत्काल चमत्कारी रसोंका वर्णन करते हैं क्यों कि कविता और कुलवती स्त्रियां रसहीना शोभित नहीं होती है ॥ १० ॥

अथ विश्वतापहरणरसमाह—

पथ्याकणार्कविषतिन्दुकदन्तिबीजतिक्तात्रिवृद्रसबलीन्सदृशान्विमर्द्य ॥ धूर्ताम्बुना सकलवासरमेष सूतः स्याद्विश्वतापहरणोऽभिनवज्वरघ्नः ॥ ११ ॥ वल्लयुग्मं भवेदस्य शृङ्गवेररसान्वितम् ॥ मुद्गयूषान्वितो भक्तो भोजनाय प्रशस्यते ॥ १२ ॥

पथ्येति ॥ पथ्या हरीतकी, कणा चपला, अर्को मारितस्ताम्रः, विषतिन्दुकः कपीलुः, दन्तीबीजं जयपालः, तिक्ता कटुकी, त्रिवृत् सर्वानुभूतिः, रसः पारदः, बलिर्गन्धकः, एतान् पथ्यादीन् सदृशान् समभागान् संचूर्ण्य पश्चात् धूर्ताम्बुना धत्तूरस्वरसेन सकलवासरमेकं दिनं विमर्द्य खल्वेन मर्दयित्वा । स्थापयेदिति शेषः । विश्वतापहरणनामा एष सूतो रसः अभिनवज्वरघ्नो नवज्वरहरश्च स्यात् । अस्य वल्लद्वयमार्द्रकरसेन देयम् । मुद्गयूषः पथ्यमत्र ॥ ११ ॥ १२ ॥

भाषार्थः–हरड, पीपल, तांबेकी भस्म, कुचला, जमालगोटाकी जड, कुटकी, निसोथ, शुद्ध पारा, शुद्धगंधक इन सबको समान भागले प्रथम पारे और गंधकको खरलकर फिर वाकी द्रव्योंका चूर्ण डाल धतूरे पत्रोंके रसमें दिनभर खरल करै, यह विश्वतापहरणनामवाला रस नवीन ज्वरको नष्ट कर देताहै ॥ ११ ॥ इसकी छः रत्ती अदरखके रसके साथ सेवन करै और मूंगका यूष तथा भात भोजन करै ॥ १२ ॥

अथ शीतारिनामरसमाह–

शुल्बं टङ्कणगन्धकौ च गरलं तुत्थं रसं खर्परं तालं तुल्यमिदं विमर्द्य घटिकामात्रं सुषव्या रसैः ॥ सूतः स्यात्त्रिपुरारिणा विरचितः शीतारिरित्थं स्मृतोऽजाजीशर्करया युतः प्रशमयेदेकाहिकादिज्वरम् ॥ १३ ॥

शुल्बमिति ॥ शुल्बं ताम्रभस्म, टङ्कणो मालतीरजः, गन्धकः गन्धपाषाणः, गरलं विषं, तुत्थं शिखिग्रीवं, रसः पारदः, खर्परं खर्परी, तालं हरितालं, गन्धकादिकं शुद्धं ग्राह्यम् । इदं सर्वं तुल्यं समांशं सुषव्या रसैः कारव्याः स्वरसैः घटिकामात्रं नाडीपरिमितकालं यावत् तावत् विमर्द्य मर्दयित्वा त्रिपुरारिणा महादेवेनेत्थमनेन प्रकारेण विरचितो निर्मितो नाम्ना शीतारिसूतः स्यात् । सोऽयं स्मृतः कृतस्मरणः शीतारिः गुञ्जापरिमितः अजाजीशर्करया युतः सिताजीरकाभ्यां संयुतः सेवितः सन् एकाहिकादिसर्वज्वरान् प्रशमयेत् । शान्तिं नयेदित्यर्थः ॥ १३ ॥

भाषार्थः–ताम्रभस्म, सुहागा, गंधक, मीठातेलिया, नीलाथोथा, शुद्धपारा, खपरिया, और हरताल इन सबको समान भाग लेकर करेलेके रसमें एक घडीतक खरल करै, यह शीतारिनामक रस महादेवजीका रचा हुआ है इसकी १ रत्ती मात्रा जीरे और खांडके साथ सेवन करै तो एकाहिक ज्वर दूर हो जाताहै ॥ १३ ॥

अथ कनकसुन्दर रसमाह—

मरीचबलिहिङ्गुलैर्गरलपिप्पलीटङ्कणैः सुवर्णभवबीजकैःसमलवैर्दिनार्धावधि ॥ जयास्वरसमर्दितैः कनकसुन्दरः सुन्दरि स्मृतो ग्रहणिकाज्वरातिसृतिवह्निमान्द्यापहः ॥ १४ ॥

मरीचबलिहिङ्गुलैरिति ॥ मरीचमूषणं, बलिर्गन्धकः, हिङ्गुलो दरदः, गरलं विषं, पिप्पली कणा, टङ्कणः पाचनकः, सुवर्णभवबीजानि कनकाङ्कुरकारणानि एतैः समलवैः समांशैः हे सुन्दरि! पुनश्च दिनार्धावधि प्रहरद्वयं यावत् तावत् जयास्वरसमर्दितैः विजयाया रसेन मर्दितैः खल्वे निक्षिप्य सम्यक् पिष्टैरेतैर्नाम्ना कनकसुन्दरो रसो भवति । स च ग्रहणिकाज्वरातिसृतिवह्निमान्द्यापहः स्मृतः ॥ १४ ॥

भाषार्थः—काली मिरच, गंधक, शंगरफ, मीठातेलिया, पीपल, सुहागा, धतूरेके बीज इन सबको समान भाग लेकर भांगके रसमें दो पहरतक खरल करै, यह कनकसुन्दर रस ग्रहणी, ज्वर, अतिसार और मन्दाग्निको दूर करता है ॥ १४ ॥

अथ सार्धद्वाभ्यां पञ्चामृतपर्पटीरसमाह—

लोहाभ्रार्करसं समं द्विगुणितं गन्धं पचेत्कोलिकाकोष्ठाग्नौ मृदुले निधाय सकलं लोहस्य पात्रे भिषक् । सर्वं गोमयमण्डले विनिहिते रम्भादले विन्यसेत्स्योर्ध्वं कदलीदलं द्रुततरं वैद्येश्वरो निक्षिपेत् ॥ १५ ॥ सेयं पञ्चामृतपर्पटी ग्रहणिकायक्ष्मातिसारज्वरस्त्रीरुक्पाण्डुगराम्लपित्तगुदजक्षुन्मान्द्यविध्वंसिनी ॥ १६ ॥

लोहेत्यादिना ॥ लोहं लोहस्य भस्म, अभ्रं तस्यापि भस्म, अर्कस्ताम्रं रसः शुद्धः सूतः, लोहादीनां समाहारद्वन्द्वैक्यम् । एतत् समं तुल्यमानं ग्राह्यम् [illegible]

गन्धकं द्विगुणितं द्विगुणं ग्राह्यम् । भिषग् वैद्यः सकलं सर्वं लोहस्य पात्रे निधाय स्थापयित्वा मृदुलेऽतीक्ष्णे कोलिकाकाष्ठाग्नौ बदरीदार्वग्नौ पचेत् । पक्त्वा च गोमयमण्डले गोपुरीषेण लिप्तायां भूमौ विनिहिते स्थापिते रम्भादले कदलीपत्रे तत्र विन्यसेत् स्थापयेत् । पुनः वैद्येश्वरो भिषजां राजा तस्योर्ध्वं तस्योपरि द्रुततरं शीघ्रं कदलीदलं मोचायाश्छदनं निक्षिपेत् न्यसेत् । एवं कृते सति ग्रहणिकायक्ष्मातिसारज्वरस्त्रीरुक्पाण्डुगराम्लपित्तगुदजक्षुन्मान्द्यविध्वंसिनी पंचामृतपर्पटी स्यात् ॥ १५ ॥ १६ ॥

भाषार्थः–लोहभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, ये तीनों समान भाग लेवै, और गंधक दो भाग इन सबको लोहेके पात्रमें रखकर झडबेरीकी मन्दी मन्दी आगपर धीरे धीरे पकावै फिर गौके गोबरके ऊपर केलेके पत्ते बिछाकर उसे रखदे ऊपरसे केलेके पत्ते ढक देवै ॥ १५ ॥ यह पंचामृतपर्पटी संग्रहणी, राजयक्ष्मा, अतिसार, ज्वर, स्त्रीरोग, पांडुरोग, विषरोग, अम्लपित्त, बवासीर और मन्दाग्निको दूर करती है ॥ १६ ॥

अस्याः सेवनेऽनुपानमाह––

ग्रहण्यामनुपानं च हिङ्गुसैन्धवजीरकम् ॥
जीरकं पाण्डुगरयोरितरेषु स्वयुक्तितः ॥ १७ ॥

ग्रहण्यामिति ॥ भर्जितयोर्हिङ्गुजीरकयोः ससैन्धवयोश्चूर्णेन ग्रहण्यामनुपानम् । पाण्डुरोगे विषरोगे च जीरकं जरणमनुमानम् । अन्यरोगेषु स्वयुक्त्या अनुपानं देयम् ॥ १७ ॥

भाषार्थः–उक्त पंचामृत पर्पटीके सेवनकी यह रीतिहै कि ग्रहणीरोगमें इस रसपर हींग और जीरेको भूनकर सेंधानमक मिला अनुपान लेवै यह पांडुरोग और विषरोगोंको दूर करता है. तथा इनसे अन्य रोगोंमें वैद्यको उचित है कि अपनी युक्तिपूर्वक अनुपान देवै ॥ १७॥

वचाविश्वाजीरोषणगरलबाह्लीकदहनत्वचां कार्या वट्यश्चणकतुलिता मार्कवरसैः ॥ यथा भानोर्भासस्तिमिरनिकरं यामिनिभवं हरन्त्येताः शूलान्यनिलमनलग्लानिमपि च ॥ १८ ॥

वचेत्यादि ॥ वचा गोलोमी, विश्वा कफारिः, जीरोऽजाजी, ऊषणं मरिचं गरलं वत्सनाभाख्यं विषं, बाह्लीकं हिङ्गु, दहनश्चित्रकः, त्वक् चोचं, चूर्णीकृतानामेषां मार्कवरसैर्भृङ्गराजरसैः चणकतुलिता हरिमन्थप्रमाणाः वट्यो गुटिकाः कार्याः । भानोर्हंसस्य भासश्छवयो यथा यामिनिभवं निशोत्पन्नं तिमिरनिकरं तमोवृन्दं हरन्ति तथा एताः वट्यः शूलानि अनिलं वातरोगं अनलग्लानिमपि अग्निमान्द्यं च हरन्ति निहन्तीत्यर्थः ॥ १८ ॥

भाषार्थः–बच, सोंठ, जीरा, काली मिरच, मीठा तेलिया, हींग, चीता, दालचीनी, इन सबको महीन पीसकर भांगरेके रसमें चनेकी बराबर गोलियां बनालेवै । ये गोलियां शूलरोग, बातरोग, मन्दाग्नि इन सबको ऐसे नष्ट कर देती है जैसे सूर्यका प्रकाश रात्रिके अंधकारको दूर कर देताहै ॥ १८ ॥

अथ द्वाभ्यां विलासिनीवल्लभाख्यं सूतमाह––

समानभागे बलिशूलिबीजे तयोः समानं कनकस्य बीजम् ॥ धत्तूरतैलेन विमर्द्य सम्यग्विलासिनीवल्लभनामधेयः ॥ १९ ॥ सूतो भवेद्वल्लयुगप्रमाणः सितायुतो मेहसमूहहारी ॥ वीर्यस्य बन्धं कुरुते नराणां निहन्ति दर्पं च सुलोचनानाम् ॥ २० ॥

समानभाग इति । सूत इति ॥ बलिशूलिबीजे बलिर्गन्धकः, शूलिबीजं शूलिनो महेश्वरस्य बीजं वीर्यं रसेन्द्रः । यथाहुः––'हरितालं हरेर्वीर्यं लक्ष्मीवीर्यं मनःशिला । पारदं शिववीर्यं स्याद्गन्धकं पार्वतीरजः ' इति । एते समानभागे समप्रमाणे

म्राद्वे । तयोर्बलिशूलिवीर्ययोः समानं समं न्यूनाधिकवर्जितं कनकस्य काञ्चनाह्वयस्य बीजमङ्कुरहेतुं च गृहीत्वा सर्वं धत्तूरतैलेनोन्मत्तस्नेहेन सम्यक् अतिशयेन विमर्द्य मर्दयित्वा विलासिनीवल्लभनामसूतो भवेत् सोऽयं वल्लयुगप्रमाणः षड्गुञ्जापरिमितः सितायुतः शर्करया संयुतो भक्षितो नराणां मेहसमूहहारी नानाविधप्रमेहानां हर्ता वीर्यस्य शुक्रस्य बन्धं बन्धनं स्तम्भं करोति सुलोचनानां शोभननेत्राणां वामलोचनानां दर्पमहंकृतिं च निहन्ति । 'तुल्या यवाभ्यां कथितात्र गुञ्जा वल्लस्त्रिगुञ्जा' इति लीलावती ॥ १९ ॥ २० ॥

भाषार्थः–गंधक और पारेको बराबर बराबर लेकर इन दोनों के बराबर धतूरेको लेवै फिर इन तीनोंको धतूरेके तेलमें मर्दन करै. इस तरह यह विलासिनीवल्लभनाम पारा बनता है ॥ १९ ॥ इसकी छः रत्ती मिश्रीमें मिलाकर सेवन करनेसे प्रमेहोंको हरता है, पुरुषोंके वीर्यको रोकता है और वह मनुष्य स्त्रियोंके अहंकार दूर करता है ॥ २० ॥

अथ कतिपयरोगेष्वनुपानान्याह–

शूले हिङ्गु घृतान्वितं मधुयुता कृष्णा पुराणज्वरे वाते
साज्यरसोनकः श्वसनके क्षौद्रान्वितं त्र्यूषणम् ॥
शीते व्याललतादलं समरिचं मेहे वरा सोपला
दोषाणां त्रितयेनुपानमुचितं सक्षौद्रमार्द्रोदकम् ॥ २१ ॥

शूल इति द्वाभ्याम् ॥ शूले शूलरोगे घृतान्वितमाज्यमिलितं हिङ्गुरामठमनुपानमुचितं योग्यम् । पुराणज्वरे एकविंशतिघस्रातीते महागदे मधुयुता कृष्णा अजादुग्धव्युषिता पृथग्भूतोपकुल्या । वाते पवनामये साज्यरसोनकः सर्पिःसंयुक्तो यवनेष्टः । श्वसनके श्वासरोगे क्षौद्रान्वितं मधुयुक्तं त्र्यूषणं त्रिकटु । शीते शीताङ्गे समरिचं सोषणं व्याललतादलं ताम्बूलम् । मेहे प्रमेहे सोपला शर्करया सहिता वरा त्रिफला दोषाणां वातपित्तकफानां त्रितये त्रये सन्निपाते सक्षौद्रं समधु आर्द्रोदकं शृङ्गवेरामृतम् ॥ २१ ॥

भाषार्थः–शूलरोगमें इस रसका घृत और हींगके साथ अनुपान है. पुराणज्वरमें शहत और पीपलके साथ, बातरोगमें घृत संयुक्त लहसनके साथ, श्वासरोगमें मधुमिश्रित सोंठ, मिरच, पीपलके साथ, शीतरोगमें काली मिरचोंके संग पानके साथ, प्रमेहमें मिश्री और त्रिफलाके साथ, त्रिदोषमें अदरखके रस और शहतके साथ सेवन करै ॥ २१ ॥

घनपर्पटकं ज्वरे ग्रहण्यां मथितं हेम गरे वमीषु लाजाः ॥ कुटजोऽतिसृतौ वृषोऽस्रपित्ते गुदकीलेष्वनलः कृमौ कृमिघ्नः ॥ २२ ॥

ज्वरे पुराणे वा तस्मिन्नातङ्के घनपर्पटकं मुस्तासमेतो रेणुः । ग्रहण्यां मथितं रसराहितं निरम्बु विलोडितं दधि । गरे विषरोगे हेम स्वर्णपत्रम् । वमीषु वान्तिरोगेषु लाजाः भ्रष्टा व्रीहयः । अतिसृतावतिसारे कुटजो गिरिमल्लिका । अस्रपित्ते वृषः आटरूषः । गुदकीलेषु दुर्नामरोगेषु अनलश्चित्रकः । कृमौ कृमिरोगे कृमिघ्नो विडङ्गः ॥२२॥

भाषार्थः–ज्वरमें नागरमोथा और पितपापडेके साथ, संग्रहणीमें मठेके साथ, विषरोगमें स्वर्णपत्रीके साथ, वमनमें धानकी खीलोंके साथ, अतिसारमें कुडाके साथ, रक्तपित्तमें अडूसेके साथ, ववासीरमें चीतेके साथ, और कृमीरोगमें वायविडंगके अनुपानके संग सेवन करै ॥ २२ ॥

अथ प्रामाणिकव्यवहारप्रमाणकं ग्रन्थान्ते वस्तुनिर्देशात्मकं मङ्गलमाचरन् कुक्षिवातभवभयरोगातुराणां भेषजान्याह—

नारायणं भजत रे जठरेण युक्ता नारायणं भजत रे पवनेन युक्ताः ॥ नारायणं भजत रे भवभीतियुक्ता नारायणात्परतरं नहि किंचिदस्ति ॥ २३ ॥

नारायणमिति ॥ रे इति सम्बोधनम् । सम्बोधनेऽङ्ग भोः पाट् प्याट् हे हैं हंहोऽरे रेऽपि चेति हेमचंद्रात् । रे जठरेण युक्ताः हे उदररोगिणो नराः यूयं नारायणं नारायणाभिधं चूर्णं भजत सेवध्वम् । तच्चोक्तं भावप्रकाशे-'यवानी हबुषा धान्यं त्रिफला चोपकुञ्चिका । कारवी पिप्पलीमूलमजगन्धा शठी वचा । शताह्वा जीरको व्योषं स्वर्णक्षीरी च चित्रकम् । द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम् । विडङ्गं च समांशानि दन्त्या भागत्रयं भवेत् । त्रिवृद्विशाले द्विगुणे शातला स्याच्चतुर्गुणा । एष नारायणो नाम्ना चूर्णो रोगगणापहः । एनं प्राप्य निवर्तन्ते रोगा विष्णुं यथाऽसुराः । तक्रेणोदरिभिः पेयं गुल्मिभिर्बदराम्बुना । आनद्धवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया । दधिमण्डेन विड्बन्धे दाडिमाम्बुभिरर्शसि । परिकर्तेषु वृक्षाम्लैरुष्णाम्बुभिरजीर्णके । भगन्दरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे । हृद्रोगे ग्रहणीरोगे कुष्ठे मंदानले ज्वरे । दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे । यथार्हं स्निग्धकोष्णेन पेयमेतद्विरेचनम्' । अस्यार्थः-उपकुञ्चिका कारवी च बृहज्जीरको यस्य मगरेला इति नाम लोके । विशाला इन्द्रवारुणी, शातला सीहुण्डप्रभेदः शातलेत्येव प्रसिद्धा । परिकर्तो गुदे परिकर्तनवत् पीडेत्यर्थः । इति नारायणचूर्णम् । रे पवनेन युक्ताः हे वातरोगिणो लोकाः यूयं नारायणं नारायणाख्यं तैलं भजत तच्च त्रिविधम् । स्वल्पं बृहन्महच्चेति भेदात् । यथा--'बिल्वाग्निमन्थस्योनाकपाटलापारिभद्रकाः । प्रसारिण्यश्वगन्धा च बृहती कण्टकारिका । बला चातिबला चैव श्वदंष्ट्रा सपुनर्नवा । एषां दशपलान् भागान् चतुर्द्रोणाम्भसा पचेत् । पादशेषं परिस्राव्य तैलपात्रे प्रदापयेत् । शतपुष्पा देवदारु मांसी शैलेयकं वचा । चन्दनं तगरं कुष्ठमेलापर्णीचतुष्टयम् । रास्ना तुरगगन्धा च सैन्धवं सपुनर्नवम् । एषां द्विपलिकान्भागान्पेषयित्वा विनिःक्षिपेत् । शतावरीरसं चैव तैलतुल्यं प्रदापयेत् । आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् । पाने बस्तौ तथाभ्यङ्गे भोज्ये नस्ये प्रयोजयेत् । अश्वो वा वातभग्नो वा गजो वा यदि वा नरः । पङ्गुर्वा वातभग्नो वा भग्नपादोथ वा नरः । अधोभागे च ये वाताः शिरामध्यगताश्च ये । दन्तशूले हनुस्तम्भे मन्यास्तम्भेपतन्त्रके । एकाङ्गग्रहणे वापि सर्वाङ्गग्रहणे तथा । क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्रा ज्वरक्षीणाश्च ये नराः । लालाजिह्वाश्च बधिरा विस्वरा मन्दमेधसः । मन्दप्रजा च या नारी या च गर्भं न विन्दति । वातार्तौ वृषणौ येषामन्त्रवृद्धिश्च दारुणा । एतत्तैलवरं तेषां नाम्ना नारायणं स्मृतम्' इति स्वल्पनारायणं तैलम् । 'शतावरी चांशुमती पृश्निपर्णी शटी बला । एरण्डस्य च मूलानि बृहत्योः पूतिकस्य च । गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च । एषां दशपलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् । पादशेषे रसे पूते गर्भं चैतान्समावपेत् । पुनर्नवा वचा दारु शताह्वा चन्दनागुरुः । शैलेयं तगरं कुष्ठं त्रुटी मांसी स्थिरा बला । अश्वाह्वा सैन्धवं रास्ना मञ्जिष्ठा घनचो-

रकम् । कौन्ती प्रियङ्गु स्थौणेयं पलार्धं कल्पयेत् पृथक् गव्याजपयसोः प्रस्थौ द्वौ द्वावत्र प्रयोजयेत् । शतावरीरसप्रस्थं तैलप्रस्थं भिषक्पचेत् । अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम् । अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां तथा नृणाम् । तैलमेतत्प्रयोक्तव्यं सर्ववातनिवारणम् । आयुष्मांश्च नरः पीत्वा निश्चयेन दृढो भवेत् । गर्भमश्वतरी निन्यात् किं पुनर्मानुषी तथा । हृच्छूलं पार्श्वशूलं च तथैवार्धावभेदकम् । अपचीं गंडमालां च वातरक्तं हनुग्रहम् । कामलां पाण्डुरोगं च अश्मरीं चापि नाशयेत् । तैलमेतद्भगवता विष्णुना परिकीर्तितम् । नारायणमिति ख्यातं वातान्तकरणं शुभम्' इति बृहन्नारायणं तैलम् ॥ 'बिल्वाश्वगन्धा बृहती श्वदंष्ट्रा स्योनाकवाट्यालकपारिभद्रम् । क्षुद्राकठिल्ला-तिवलाग्निमन्थं मूलानि चैषां सरलामुतानाम् । मूलं विदध्यादथ पाटलीनां प्रत्येकमेषां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः । सपादप्रस्थं विधिनोद्धृतं च द्रोणैरपामष्टभिरेव पक्त्वा । पादावशेषेण रसेन तेन तैलाढकाभ्यां सममेव दुग्धम् । छागस्य मांसद्रवमेव तुल्यमेकत्र सम्यग्विप-चेत् सुबुद्धिः । दद्याद्रसं चैव शतावरीणां तैलेन तुल्यं पुनरेव तत्र । रास्नाश्वगन्धा द्रुमदारुकाष्ठं पर्णी चतुष्का गुरुकेसराणि । सिन्धूत्थमांसी रजनीद्वयं च शैलेयकं चन्दनपुष्कराणि । एला सयष्टी तगराब्दपत्रं भृङ्गाष्टवर्गास्तु वचा पलाशम् । स्थौणेयवृश्चीरकचोरकाख्यमोभिः समस्तैर्द्विपलप्रमाणैः । कर्पूरकाश्मीरमृगाण्डजानां दद्यात् सुगन्धाय वदन्ति केचित् । प्रस्वेददौर्गन्ध्यनिवारणार्थं चूर्णीकृतानां द्विपलप्रमाणम् । आलोड्य सम्यग्विधिवद्विपक्वं नारायणं नाम महच्च तैलम् । सर्वैः प्रकारैर्विधिवत् प्रयोज्यमश्वस्य पुंसां पवनार्दितानाम् । ये पङ्गवः पीठविसर्प-णाश्च मन्याहनुस्तम्भशिरोगदार्ताः । मुक्ता नरास्ते बलवीर्ययुक्ताः संसेव्य तैलं सहसा भवन्ति । वन्ध्या च नारी लभते च पुत्रं वीरोपमं सर्वगुणोपपन्नम् । शाखाश्रिते कोष्ठगते च वाते वृद्धैर्विधेयं पवनार्दितानाम् । जिह्वानले दन्तगते च शूले औन्मादकौब्जे ज्वरकर्षितानाम् । प्राप्नोति लक्ष्मीं प्रमदाप्रियत्वं जीवेच्चिरं चापि भवेद्यु-वेव । देवासुरे युद्धवरे समीक्ष्य स्नाय्वस्थिभग्नानसुरैः सुरांश्च । नारायणेनापि स्वबृंह-णार्थं स्वनामतैलं विहितं तु तेषाम्' ॥ इति महन्नारायणतैलमिति सुखबोधः ॥ रे. भवभीतियुक्तः । भवनं भवो जन्म स्वदृष्टोपनिबद्धानन्तशरीरपरिग्रहः तेनोपलक्षिताः जायते, अस्ति, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, नश्यति, इति यास्कपठिताः षड्भाव-विकाराः । बहुजन्मार्जितैः पुण्यैरुद्भूता या तेभ्यो भीतिः साध्वसम् तया युक्तास्त-द्वन्तो हे साधवः । भवति सततमविच्छेदेन दृश्याद्याकारतयेति संसारो वा भवः स चाव्यक्तादि स्थावरान्तश्चक्षुष्मतां दुःखरूप एव भाति शिवोक्तेश्च । तथाहि–'दुःखमूलं हि संसारः स यस्यास्ति स दुःखितः । तस्य त्यागः कृतो येन स सुखी नापरः

प्रिये । प्रभवं सर्वदुःखानामालयं सकलापदाम् । आश्रमं सर्वपापानां संसारं वर्जये-त्प्रिये । अबन्धबन्धनं घोरमस्वीकृतमहाविषम् । अशस्त्रखण्डनं देवि संसारासक्तचेतसाम्' इत्यादि । कुलार्णवे-'कृच्छ्रेणामेध्यमध्ये नियमिततनुभिः स्थीयते गर्भवासे कान्ता-विश्लेषदुःखव्यतिकरविषये यौवने चोपभोगः । वामाक्षीणामवज्ञा विहसितवसतिर्वृद्ध भावोप्यसाधुः संसारे रे मनुष्या वदत यदि सुखं स्वल्पमप्यस्ति किञ्चित् ' इत्या-द्युक्तेश्च । एवं दुःस्वरूपं भवं दृष्ट्वोत्पन्नभीतयः पलाय्य गन्तुं स्थानान्तरमपश्यन्तोऽ-तिदरसंयुक्ताः यूयं नारायणं भजत नारायणमखिलकल्पनाधिष्ठानम् । तथाहि—'यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं दृश्यते श्रूयतेऽपि वा । अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितः' इति मंत्रवर्णः । ' आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः' । इति मनुः –'नारायणाय नम इत्यमुमेव सत्यं संसारघोरविष-संहरणाय मंत्रम् । शृण्वन्तु भव्यमतयो यतयोऽस्तरागा उच्चैस्तरामुपदिशाम्यहमूर्ध्व-बाहुः' इति नृसिंहपुराणम् । इति स्थूलदृशां नारायणशब्दार्थः । सूक्ष्मदर्शिनः पुनरा-चक्षते । नरशब्देन चराचरात्मकं शरीरजातमुच्यते । तत्र नित्यसंनिहिताश्चिदाभासा जीवा नाराः तेषामयनमाश्रयो नियामकोऽन्तर्यामी नारायण इत्यधिकृत्यान्तर्यामिब्रा-ह्मणं । बृहदारण्यके-' श्रीनारायणाख्यमाम्नायं चाधीयते तमेवाभिन्ननिमित्तोपादानं वेदान्तवेद्यमन्तर्यामिणं गुरूपदिष्टसमाधिविधिना स्वरूपतस्तटस्थलक्षणेन वागमोपदिष्टे-नायनेन भजत । तदुपासनं विना विशेषतः कलियुगेऽन्य उपायो नास्ति' । 'कलौ पापयुगे घोरे तपोहीनेऽतिदुस्तरे । निस्तारबीजमेतावद्ब्रह्ममन्त्रस्य साधनम्' इति । महे-श्वरोक्तेः । यतो नारायणान्तर्यामिणः परतरमुत्कृष्टं शाश्वतं किञ्चिन्नास्ति हि । अव्य-क्तादयो हि कल्पिताः कल्पिताश्चाधिष्ठानावशेषाः नहि कल्पिताद्रज्जूरगात् कश्चिन्मृतो दृष्टः श्रुतो वा ' अभयं वै जनक प्राप्तोसि' इति श्रुतिः ' भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यात्' इति भागवतं चात्र मानम् । अतोऽशेषभयनिवृत्तिसाधनं ब्रह्मोपासनमेवेति।२३।

भाषार्थः–हे उदररोगसे पीडित मनुष्यौ ! नारायण चूर्णका सेवन करौ, जो वातरोगसे पीडित हौ तौ नारायण तेलका सेवन करौ और सांसारिक भयसें पीडित मनुष्यौ ! नारायणका भजन करौ, नारायणसे परे इस संसारमें कुछ नहीं है ॥ २३ ॥

नारायण तैलः–बेलगिरी, अदनी, स्योनापाठा, पाडल, पारि-भद्र, प्रसारिणी, असगंध, बडी कटेरी, छोटी कटेरी, बला, अति-

बला, गोखरू, सांठकी जड, इन सबको, चालीस चालीस तोले लेकर ४०६ तोले पानीमें पकावै वच चौथाई वच रहै तब उसे कपडेमें छान ले और उसमें २५६ तोले तिलका तेल मिलाकर कढाईमें चढादे और सोंफ, देवदारु, जटामांसी, शिलापुष्प, वच, चन्दन, तगर, कूट, इलायची, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, रास्ना, असगंध, सेंधानमक, सांठ ये सब आठ आठ तोले लेकर चूर्ण करके मिलावै और तेलके बराबर शतावरीका रस डाले तथा चौगुना बकरी वा गौका दूध डालकर पकाले, इसको पान, बस्तिकर्म, मर्दन, भोजन नस्यद्वारा सेवन करै यह तैल वात व्याधियोंमें अत्यन्त हितकर है ॥

नारायण चूर्णः—भावप्रकाशमें लिखा है कि अजमायन, हाऊवेर, धनियां, त्रिफला, बडाजीरा, अजमोद, पीपलामूल, अजगन्धा, कचूर, बच, सोंफ, जीरा, सोंठ, काली मिरच, पीपल, स्वर्णक्षीरी, चीता, सज्जीखार, जवाखार, पुहकरमूल, कूठ, सेंधानमक, कालानमक, मनियारीनमक, सांभरनमक, खारीनमक, और वायविडंग इन सबको समान भाग लेवै, जमालगोटाकी जड तीन भाग, निसोथ और इन्द्रायणकी जड दो दो भाग और सातला ४ भाग इन सबका चूर्ण बना लेवै ॥

इस चूर्णको उदररोगी तक्रके साथ, गुल्मरोगी बदराम्बुके साथ, आनद्धवातरोगी मद्दाके साथ, वातरोगी प्रसन्नाके साथ, मलावरोधमें दहीके तोडके साथ, ववासीरमें अनारके जलके साथ, गुदामें कैंचीसे काटनेकीसी वेदना होती हो तो वृक्षाम्लके साथ, अजीर्णमें गरम जलके साथ, सेवन करै इसी तरह भग-

न्दर, पांडुरोग, खांसी, श्वास, गलग्रह आदि रोगोंमें जुदे जुदे अनुपानोंके साथ, सेवन करै ॥

अथ कविर्निजपरिचयादिकं कथयति —

आयुर्वेदवचोविचारसमये धन्वन्तरिः केवलं सीमा
गानविदां दिवाकरसुधाम्भोधिस्त्रियामापतिः ॥ उत्तं-
सः कवितावतां मतिमतां भूभृत्सभाभूषणं कान्तो-
क्त्याऽकृत वैद्यजीवनमिदं लोलिम्बराजः कविः ॥ २४ ॥

इति श्रीलोलिम्बराजकृतौ वैद्यजीवने पञ्चमो विलासः ॥

आयुरित्यादिना ॥ लोलिम्बराजः कविः वैद्यजीवनं नामेदं काव्यमकृत चकार । कया कान्तोक्त्या । 'सर्वाङ्गसुन्दरी नारी कान्ता काव्येषु कथ्यते'। कान्ताया विशेषाङ्गनाया उक्त्या तद्वचनद्वारेण । कथम्भूतो लोलिम्बराजः आयुर्वेदवचोविचारसमये आयुः शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगः तदस्मिन् विद्यते इति अथवा आयुरनेन विन्दति लभते इत्यायुर्वेदोष्टादशविद्यान्तर्गतधन्वन्तरिप्रणीतोऽथर्ववेदस्योपाङ्गं वैद्यशास्त्रं तस्य वचांसि वाक्यानि तेषां विचारोऽनेकवादिवृन्दमतमुद्धूय स्वमतस्थापनं तत्समये तत्कार्यकाले केवलं धन्वन्तरिर्नारायणांशो दिवोदासो विक्रमादित्यसभारत्नं वा । धन्वं शिल्पशास्त्रं तस्यान्तं पारमियर्ति गच्छति । ऋगतौ अचइः । पुनश्च गानविदां सङ्गीतशास्त्रज्ञानां सीमाऽवधिः । पुनर्दिवाकरसुधाम्भोधिरमृतार्णवस्तस्य त्रियामापतिरिन्दुः । पुनर्मतिमतां कवितावतामुत्तंसः शिरोभूषणम् । पुनर्भूभृत्सभायाः भूषणमलङ्कार इत्यर्थः ॥२४ ॥

भाषार्थः—आयुर्वेदके वचनोंके विचारके समय महर्षि धन्वन्तरिके समान, संगीतशास्त्रके जाननेवालोंमें सीमारूप, लोलिम्बराजका पिता जो सुधासमुद्ररूप दिवाकर उनको चन्द्रस्वरूप, महान् कवियोंके मुकुटमणि और राजसभाके भूषणस्वरूप लोलिम्बराज कविने अपनी कान्ताकी प्रेरणासे यह वैद्यजीवन नामक ग्रंथ रचा है ॥ २४ ॥

खपक्षाङ्कधरायुक्ते १९२० वत्सरे युवनामनि । फाल्गुनार्जुनपक्षस्य भूतायां मङ्गलेऽहनि । श्रीसुखानन्दावधूतो वैद्यजीवनदीपिकाम् । कृत्वा समर्पयामास श्रीनाथ-चरणाम्बुजे ॥ १ ॥

इतिश्रीकुलावधूतश्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमद्धरिहरानन्दनाथभारतीशिष्य-ब्रह्मावधूतश्रीसुखानन्दनाथविरचितायां सुखानन्द्यां वैद्यजीवनदीपिकायां पञ्चमवि-लासस्य प्रकाशार्थः ॥ ५ ॥

इति पञ्चमविलासस्य भाषानुवादः समाप्तः ॥

इतिश्रीमथुरा निवासि श्रीकृष्णालालकृत भाषाटीकासहितं

समाप्तमिदं वैद्यजीवनम् ।